सामाजिक और साहित्यिक इतिहास में मीराबाई की छवियाँ

(एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डॉ.रामचन्द्र

शोध-छात्रा

ज्योति कुमारी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं सांस्कृतिक अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली-110067

2008

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIRVERSITY
Centre of Indian languages
School of languages literature & culture studies
New Delhi- 110067, India

Centre of Indian languages Date- 29.07.2008

DECLARATION

I declare that the material in this dissertation entitled " SAAMAJIK AUR SAHITIYIK ITIHAS MEIN MEERA BAI KI CHHAVIYAN " Submitted by me is an original research work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other university/ institution.

Jyoti Kumari
JYOTI KUMARI
RESEARCH SCHOLAR

29.07.08
DR. RAMCHANDRA
SUPERVISOR
Centre for Indian Languages & Literature
School of Languages & Cultural Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi 110067

PROF. CHAMAN LAL
CHAIRPERSON
Centre for Indian Languages & Literature
School of Languages & Cultural Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi 110067

विषयानुक्रम

अपनी बात **i-iii**

अध्याय एक 4–41

भक्ति परंपरा में मीरा :

गरल अमृत ज्यों पीयो

अध्याय दो 42–79

किंवदंतियां और इतिहास :

राजकीय उपेक्षिता की लोक महिमा

अध्याय तीन 80–110

लोकचित्त में मीरा :

अेकर मीराबाई आंगणिये पधारो

उपसंहार 111–113

संदर्भ ग्रंथ सूची 114–118

अपनी बात....

अपनी दादी के मुख से कई लोकगीतों को सुनकर, समझकर मुझे लोक व लोकमहत्व समझ में आया। इन गीतों के कारण मुझमें और मेरी दादी में रागात्मक संबंध बना। वे मेरी पथ–प्रदर्शिका भी बनीं और सखी भी। मुझे बहुत आश्चर्य होता जब वे हर मौके के लिए एक गीत गा लेती थीं। मेरी बाल बुद्धि को ये समझना मुश्किल था कि इतने लोकगीत उन्हें कैसे याद रह जाते हैं। और तो और, गाते–गाते कण्ठ अचानक आर्द्र हो जाता, आंखें भीग जाती थीं तो यह भी समझना मुश्किल था कि उन्हें कैसे हँसाऊ? और अगले ही पल, जब वे 'भात' के गीत गाने लगतीं, तब प्रसन्नता उनके मुख पर यकायक दिखने लगती।

इन सभी अनुभवों ने मुझे राजस्थानी लोकगीतों में भक्ति संवेदना विषय पर शोध करने को बाध्य किया। हरि अनंत हरि कथा अनंता की भाँति इन लोकगीतों की न तो कोई सीमा है और ना ही कोई निश्चित संख्या। इस कारण इस कार्य को केंद्रित करने के बारे में सोचा गया। इसी क्रम में मीराबाई की संवेदना व लोक संवेदना जुड़ती हुई प्रतीत हुई।

मीराबाई मूल रूप में भक्त थीं। अपने ठेठ और संपूर्ण अर्थों में भक्त। एक स्वस्थ मस्तिष्क और स्वस्थ जीवन–दृष्टि तभी आ सकती है, जब मन में उचित–अनुचित का निर्णय लेने में दुविधा ना हो। कृष्णर्पिता मीरा भी सभी दुविधाओं से मुक्त थीं। उन्होंने वही किया जो उन्हें उचित लगा और वही कहा जो उनकी भावनाओं को अभिव्यक्त करता था। यह ठीक, लोक की ताल थी जिसे वो अपने गीतों में प्रकट करती हैं।

कृष्ण राग में डूबी मीरा से यह उम्मीद व्यर्थ थी कि वे आत्मकथा या प्रत्यक्षतः अपने विषय में कहतीं या लिखतीं, संभवतः ऐसा किसी भी मध्यकालीन संत ने नहीं किया। फलस्वरूप लोक ने, कबीर की झीनी–झीनी चदरिया मीराबाई को भी ओढ़ा दी। फिर क्रम प्रारंभ होता है नित नई छवियाँ बनने का। मीराबाई के साथ खास बात यह है कि उनकी विविध छवियाँ विकसित व लोकमान्य हुई। इस मान्यता प्राप्ति का अध्ययन मध्यकालीन समाज के आत्मबोध तथा आधुनिक समाज

द्वारा मध्यकालीन समाज को देखने के तरीके, दोनों को ही समझने में सहायता करता हैं।

वास्तव में, छवियाँ केवल छवियाँ नहीं होती बल्कि वे वैचारिक इतिहास को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम भी है। वे वैचारिक उथल–पुथल व बदलाव का प्रकटीकरण भी हैं। मीरा की बदलती छवियाँ भी समाज की व्यापक सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से जुड़ती हैं। इन समूची प्रक्रियाओं का अध्ययन तो इस लघु शोध प्रबंध में संभव न था। यहाँ तो बस यह प्रयत्न किया गया है कि इन बदलती छवियों का संक्षिप्त ब्यौरा देते हुए सांस्कृतिक प्रक्रिया के कुछ पहलुओं की ओर ध्यान खींचा जाये।

इस क्रम में प्रथम अध्याय 'भक्ति परंपरा में मीरा' में जहाँ एक ओर मीरा 'भगति की खानि' हैं तो पुष्टिमार्गियों की नज़र में दारी राण्ड। मीरा के प्रति पुष्टिमार्गियों का यह रवैया क्यूँ था, इसकी पड़ताल की गई है और वर्तमान के संदर्भ से जोड़कर देखा गया है।

इसी प्रकार दूसरे अध्याय 'किंवदंतियाँ और इतिहास' में साहित्यिक व राजनैतिक इतिहास ग्रंथों में मीराबाई की छवियों को देखा गया है और स्त्री–विमर्श के प्रसंग में उनकी स्थिति को जाँचा गया है। और अंत में, तृतीय अध्याय 'लोक चित्त में मीरा' में मीरा के पदों में लोक और लोक में मीरा दोनों ही दृष्टियों से देखने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबंध कैसा बन पाया है, ये पढ़ने वाले तय करेंगे किंतु मेरा प्रयास निरंतर सुधार का बना रहेगा।

इस शोध प्रबंध को लिखने के दौरान मेरे शोध निर्देशक डॉ. रामचंद्र ने अपने अमूल्य सुझावों से मुझे दिशा दी, जिनकी मैं बहुत आभारी हूँ।

मेरे गुरु प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने भक्तिकाल की समझ व संवेदना को समझने में मेरी बहुत मदद की। एम.ए. के दौरान कबीर पर की गई कक्षाओं ने इसमें बहुत सहयोग दिया। शोध करने के लिए दृष्टि को संतुलित व समालोचित होना चाहिए। यह पाठ मैंने आदरणीय गुरु से सीखा। स्त्री–विमर्श को नई दृष्टि से

देखने के संदर्भ में श्रीमती सुमन केशरी की कविताएँ बेहद काम आईं। जो मीराबाई को नए ढंग, नए रंग से सोचने के लिए मुझे प्रेरित करती रहीं। इनकी मैं बहुत आभारी हूँ।

इस शोध प्रबंध को पूरा करने में भाई–बहिन, दादी, मम्मी–पापा व मित्र का भावनात्मक सहयोग मिला। पुरुषार्थ व भावना का मिला–जुला रूप मेरे पिता हैं। मैं अपने आप को धन्यवाद देती हूँ कि मैं इनकी बेटी हूँ। कुछ शब्द मेरे पिता के लिए।

पिता
तुम्हारे हाथ,
जो साईकिल चलाना सिखाते,
तो कहते, आगे बढ़ो!
रुको मत,
पीछे मत देखो।
लेकिन, थामे रहते पीछे से....
तुमने ऊंगली नहीं पकड़ी मेरी,
पर आकाश में उड़ना सिखाया।
तो,
आओ पिता,
मैं भी ले चलूँ तुम्हें,
तुम्हारे हाथ पकड़,
ठीक वहाँ,
तुम्हारे सपनों के जग में
वो जग,
जो बस तुमने मुझे दिखाया।

मैं निरंतर प्रयासरत हूँ....

ज्योति कुमारी

अध्याय एक

भक्ति परंपरा में मीरा : *गरल अमृत ज्यों पीयो*

अध्याय एक

मीराबाई के पद मीरा के जीवन वृत्त की ही भाँति विवादास्पद रहे हैं। राजस्थान में मीरा के विषय में कहा जाता है कि "नाम रहेगो काम सों, सुनो सयाने लोय। मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मूँड्यो कोय।" इसके अनुसार मीरा गुरु–शिष्य–वंश पंरपरा विहीन थीं। लोकलाज, कुल–मर्यादा के त्याग के कारण उनसे संबंधित राजवंशों ने उनके पदों का संरक्षण नहीं किया। डॉ. सी.एल. प्रभात का कहना है कि "मीरा ने कोई शिष्य नहीं मूँडा। इस अभाव में ऐसी धार्मिक–सांप्रदायिक गद्दियाँ भी स्थापित नहीं हुई, जहाँ उनकी रचनाएँ आग्रहपूर्वक सुरक्षित रहती। वे स्वयं भी किसी विशेष संप्रदाय में दीक्षित नहीं हुईं थीं। अतएव उन्हें किसी पूर्व प्रचलित संप्रदाय के पोषण का तो प्रश्न ही नहीं था, कुछ संप्रदाय के लोग तो उनसे इतने रुष्ट थे कि 'दारी राण्ड' के विशेषणों से ही उनका स्वागत करते थे। जब मीरा का महत्व जनता में प्रतिष्ठित हो गया तब विभिन्न संप्रदायों की पोथियों में उनके पदों को स्थान मिलने लगा, वह भी जोड़–तोड़ के साथ।"[1]

इसके विपरीत जिस साधु समाज में बैठकर मीरा सत्संग करती थीं, भजन–कीर्तन–नृत्य करती थी, उसने मीरा के पदों को अवश्य संरक्षण प्रदान किया। काल–प्रवाह के साथ–साथ मीरा के पद अनेक प्रदेशों में, अनेक भाषाओं में, अनेक संप्रदायों में भिन्न–भिन्न रागों में गाये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि मीरा की मूल वाणी के साथ–साथ मीरा–भाव के भी अनेक पद मीरा के नाम से चल पड़े। इन पदों से मीरा विषयक जानकारी तो मिलती ही है, इसके साथ ही साथ समकालीन व परवर्ती कवियों, भक्तों व समीक्षकों ने अपनी रचनाओं में मीरा के विषय में जो भाव, विचार व घटना प्रसंग प्रकट किए हैं वे भी मीरा के व्यक्तित्व व वक्तव्य को समझने में सहायक हैं। मीरांबाई के विषय में महत्वपूर्ण उल्लेख राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश के अनुवर्ती ओरछा निवासी हित हरिराम

की 'व्यासवाणी' में मिलता है। जिसकी रचना 1555 ई. में हुई थी। व्यासवाणी में मीरा संबंधी दो पद मिलते हैं। यथा –

1. इतनौ है सब कुटुम हमारो।
सैन, धना, अरु नामा, पीपा और कबीर, रैदास चमारौ।।
सूरदास, परमानंद, महा, मीरां भक्ति विचारौ।।
इहि पथ चलत स्याम–स्यामा के, 'व्यास' हि बोरौ, भावहि तारौ।।

2. बिहार हि स्वामी बिनु को गावै।
बिनु हरिवंशहि राधा–वल्लभ को रस रीति सुनावै।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जु कौ को अब लाड़ लड़ावै।
रूप–सनातन को वृंद विपिन माधुरी पावै।
मीरांबाई बिनु कौ भक्तनि पिता जानि उर लावै।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को एक बंधु कहावै।
परमानंददास बिनु कौ अब लीला गाय सुनावै।
सूरदास बिनु पद रचना कौ कौन कविहि कहि आवै।
और सकल साधुन बिनु को अब यह कलिकाल कटावे।
व्यासदास इन सब बिनु को अब तन की तपति बुझावै।"[2]

इन पदों से ज्ञात होता है कि मीरा परम भक्त थीं और कबीर, सूरदास, रैदास आदि की कोटि में आती थीं। दूसरे पद में सभी भक्तों की विशेषताओं का वर्णन है और मीरा के विषय में कहा गया है कि वे भक्तों को सम्मान दे, हृदय से लगाती थीं। मीरांबाई के संबंध में निर्विवाद रूप से निश्चित और पूर्ण विश्वसनीय प्रथम उल्लेख व्यासजी के उक्त पदों में ही मिलता है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता का साक्ष्य है कि वे हितहरिवंशजी के साथ व्यक्तिगत रूप से मीरांबाई के संपर्क में आए थे। मीरा की ब्रज यात्रा के समय वे ब्रज में थे या नहीं, इसका पता नहीं, पर वे ब्रज के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त, जैसे हितहरिवंश, हरिदास, जीवगोस्वामी आदि के अंतरंग सखा रहे थे। अतः इनके मीरा संबंधी उल्लेख पूर्ण विश्वसनीय कोटि में रखे जा सकते हैं।

राधावल्लभ संप्रदाय से ही संबंधित ध्रुवदास की 'भक्त नामावली' में मीरा के भक्त रूप को प्रतिष्ठित किया गया है। इसका रचनाकाल 1643 ई. के लगभग माना जाता है। ध्रुवदास ने मीरा को 'प्रकट भक्ति की खानि' कहा है। भक्त नामावली में मीरा संबंधी दोहे इस प्रकार हैं –

लाज छांडि गिरिधर भजे, करी न कछु कुल कान।
सोई मीरां जग विदित, प्रकट भक्ति की खान।।
ललितहु लाई बोलि कै, तासों हो अति हेत।
आनंद सो निरखत फिरें, वृन्दावन रस खेत।।
नृत्तति नूपुर बांधि के, गावति लै करताल।
विमल हियो भक्तनि मिली, त्रिन सम गनि संसार।।
बंधुनि विष ताको दियो, करि विचार चित आन।
सो विष फिर अमृत भयो, तब लागे पछितान।"[3]

इसमें उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इसमें मीरा को भक्ति की खान अर्थात् भक्तों में श्रेष्ठ होने का भाव दिया है और साथ ही साथ मीरा के विद्रोही रूप को भी उभारा है, जिससे सहज ही, आजकल 'भक्त' होने की प्रचलित धारणा जिसमें भक्त निरीहता का पर्याय माना जाता है, खण्डन हो जाता है। मीरा के विद्रोह को मध्यकाल भी समझता था अतः उत्तर आधुनिक काल का एतद् विषयक मौलिकता का दावा ही व्यर्थ है।

गुजराती साहित्य के आदिकवि कहे जाने वाले नरसिंह मेहता, जिनका जीवनकाल सोलहवीं सदी विक्रमी के लगभग माना जाता है। इनका भी एक पद मीरा के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी देता है –

"तुं तारा वीर्द साहाँयु जे जे शामला, न जोईश करणी हमारी रे।
मीरांबाई बिख अमृत कीधां विदुरनी आरोग्या भाजी रे।"[4]

इस उल्लेख से मीरा के विष पीने और उससे बच जाने की घटना का पता चलता है। गुजराती स्रोतों में मीरा संबंधी इस सूचना का प्रथम उल्लेख इस पद में ही होता है। गुजराती कवियों के ही क्रम में देखें तो 'कुंवरबाईनु मोसालु' के

रचयिता विष्णुदास का नाम उल्लेखनीय है। इस कृति में कृष्ण से सहायता की प्रार्थना करते हुए नरसिंह मेहता से कहलवाया गया है –

प्रहलादनी पीड़ा टाली
बाल बाईना कुल बहु कंजोड़, हाथ काढ़ी लीघां रणछोड़,
मीरांबाई ने विख अम्रीत झरे, वरद राख्युं पोते आपणे
हेवा वचन तमो श्रवण सुनो, कुंवर बाई ने मोसालुं करो।"[5]

कवि विष्णुदास का जन्म संवत् 1600 के लगभग माना जाता है। यह समय मीरा के ठीक बाद में पड़ता है। बहुत संभव है कि वे उन व्यक्तियों के संपर्क में आये होंगे जो मीरा व नरसी के जीवन काल में वर्तमान थे। अतः विष्णुदास के पद उल्लेखनीय कोटि में रखे जा सकते हैं। मीरा की ख्याति की व्यंजना करने वाले पदों के रचयिता के रूप में गुजराती कवि 'जसवंत' का नाम भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार छोटमदास कृत 'मीरा नो गरबो' राग गरबी में लिखी गई रचना है। उल्लेखनीय बात यह है कि मीरा इसमें स्वयं वक्ता है।

"प्रभू जी पालव पकड़ी रही छू पुरणा प्रेमथी रे –
मारा छेल छबीला अंतरना आधार,
ऊभी अरज करे छे मीरा रांकडी रे
तमे दासी तरांण दुख म्हरी दूर करो रे।"[6]

मीरांबाई की ख्याति व प्रशंसा केवल उनसे जुड़े स्थलों में ही नहीं है अपितु संपूर्ण भारत में उन्हें सराहा गया है, सम्मान दिया गया है। भक्ति संवेदना की अखिल भारतीयता यहाँ प्रकट होती है। भक्तिकालीन संतों का साहित्यिक महत्व तो था ही, साथ ही साथ सामाजिक महत्व भी कम नहीं था। लोक कण्ठ में ये भक्ति संत इतने व्यापे हुए हैं कि निपट–निरक्षर व्यक्ति भी कबीर, मीरा और तुलसीदास के पद सहज रूप से गाता है। तुलसीदास का रामचरितमानस ग्रियर्सन को उत्तर भारत का बाइबिल लगा था तो दूसरी ओर कबीर के पदों को मृत्युपरांत, 'निरगुन गान' के रूप में गाने की परंपरा आज भी विद्यमान है। ये धर्म भक्ति संत मेघ खण्डों के रूप में अलग–अलग क्षेत्रों में बरसे परंतु सभी में भक्ति संवेदना का जल एक ही था।

इस कारण संवेदना को क्षेत्रीय सीमाओं में बांध देना असंभव है और यही भक्ति संवेदना की अखिल भारतीयता का आधार है।

महाराष्ट्र के एकनाथ महाराज (1547–1608 ई.) के एक अंभंग से ज्ञात होता है कि मीरा को दिया गया विष स्वयं कृष्ण ने पी लिया था।

"विष पितो मिराबाई साठीं विदुराच्या हाटी कण्या स्वयं।"[7]

यह भक्ति भावना पूर्ण कथन है, जिसके शाब्दिक अर्थ को न ले कर मूल भाव को ही ग्रहण करना चाहिए।

इनके ठीक बाद जन्में तुकाराम (1608–1649 ई.) के उल्लेखों से भी विषपान व विष के अमृत में बदलने के प्रसंगों का ही उल्लेख है। तुकाराम के शिष्य निलोवा महाराज के पदों से भी मीरांबाई के रूपवती होने व विषपान के प्रसंगों का उल्लेख मिलता है।

इसी क्रम में महाराष्ट्र के वारकरी संप्रदाय के महीपति, जिनकी रचना 'भक्त लीलामृत' (1744 ई.) है, वे कहते हैं कि मीरा को विष उनके पिता ने दिया था। मीरा के विष पीने के बाद सारंगपानि (चक्रधारी विष्णु) का शरीर नीला पड़ गया था। लेखन में वारकरी संप्रदाय की भावना का प्रभाव तो अवश्य है परंतु इसमें भक्त की महिमा का गुणगान किया है कि ईश्वर अपने भक्त की रक्षा करने को सदैव तत्पर रहते हैं।

संत दरिया साहब (बिहार वाले) जिनका जीवन वृत्त (1674–1780 ई.) है। इनके पदों में भी मीरा के कृष्ण प्रेम में पागल होने तथा प्रचलित जीवन वृत्त का ही वर्णन है। इनकी सूचना नई तो नहीं है किंतु इनके समय तक मीरा के कृष्ण प्रेम की बात ही प्रचलित थी। उन्हें निर्गुण मत की ओर खींचने की कोशिश नहीं थी।

राजस्थान निवासी संत हरिदास के पद से भी मीरांबाई के प्रेममयी व भक्त होने की सूचना मिलती है। यथा –

"एक राणी गढ़ चित्तौड़ा की
मेड़तणी निज भगति कुमावै, भोजराइजी का जोड़ा की।

सब सुख छाँडि छनक मैं चली, लाली लगायी रणछोड़ा की।
ताली बजावै गोविंद गुण मायै, लाज तजी बडल्होड़ा की।
मन धर सिर साधां कै अरपण, प्रीति नहीं मन थोड़ा की।
हरीदास मीरा बड़ भागिणि, सब राण्या सिरमोड़ा की।"[8]

इसके विपरीत मीरा को ज्ञानमार्गी कहने का प्रथम उल्लेख हरियाणा के संत गरीबदास (1717 ई.) के पदों में मिलता है। इनकी रचनाओं का संग्रह 'श्री गरीबदास जी महाराज की बानी' के नाम से संकलित है। उसमें निम्न उल्लेख मिलते हैं।

"गरीब जूं मीरां राठौड़ कूं राखी नहीं उधार।
पकर्या लोहा ज्ञान का, काट्यौ कटक सिंघार।"[9]

"नानक दादू तुलसी सौ तौ आय चढ़े हैं कुर्शी।
अनंत कोटि घणनामी, कँहा तक विरद बखानौ स्वामी।
कर्मा, मीरांबाई, मुकुट कमाली छुपाई –
पूल्ही पद प्रवीनां, जा का गगन मण्डल अस्थाना।"[10]

गरीबदास के पद उल्लेखनीय इसलिए हैं क्योंकि इनमें मीरा ज्ञानमार्गी दिखती हैं। इस संबंध में डा. सी.एल. प्रभात का कहना है कि "मीरा को ज्ञानमार्गी कहने वाला प्रथम उल्लेख गरीबदास का ही उपलब्ध हुआ है। इनसे पूर्व के दरिया साहब हरिदास आदि संत मीरा को प्रेम भाव की कृष्ण भक्त घोषित कर चुके थे। वस्तुतः मीरा को संत मत का अनुयायी कहने की परंपरा संवत् 1800 के आसपास ही जन्म लेती है।"[11]

इस मुद्दे पर आगे बढ़ें तो एक तरफ मीरा सगुण प्रतीत होती हैं तो अनेक पदों में वे निर्गुण प्रतीत होती हैं। वास्तव में महत्वपूर्ण यह नहीं है कि मीरा सगुण नहीं थीं या निर्गुण, मुख्य यह है कि वे गिरिधर को पूजती हैं किंतु उनमें निर्गुण तत्व भी मिलते हैं। भक्ति, किन्हीं विशेष रूपों, सीमाओं व क्षेत्रों में बंधी नहीं होती। भक्त अपनी सुविधानुसार अपना रास्ता चुनता है और स्वयं ही उसका अतिक्रमण भी

करता रहता है क्योंकि भक्ति की उफनती नदी को सगुण या निर्गुण के पाटों में बांधना असंभव है। कबीर निर्गुण हैं परंतु भाववेग में ईश्वर को विट्ठल, गोपाल और राम के नामों से पुकारते हैं और तो और प्रेम निवेदन के समय स्त्री हो जाते हैं। इसी तर्ज पर मीरा के कृष्ण कहीं–कहीं 'राम' हो जाते हैं, वे वैराग धारण करने की बात करती हैं और ज्ञान की युक्ति से प्रिय के अगम देश में जाने की कल्पना करती हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि –"मीरांबाई की दृष्टि में उनके इष्टदेव के निगुर्ण वा सगुण रूपों में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। इस कारण, जहाँ वे उसमें 'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसे सूरज धामा।' कहकर उसके साथ अपना तादात्म्य प्रकट करती हैं वहीं उसे, अलग रहनेवाले की भांति अपने पास आने के लिए निमंत्रित भी करती हैं। मीरांबाई को उस प्रियतम के वास्तविक रूप का आध्यात्मिक रहस्य अवश्य ज्ञात है। किंतु उनके प्रेम की तीव्र भावना उसे अमूर्त मानकर अपनाने नहीं देती।"12

मीरा के कृष्ण प्रेमी होने या ज्ञानमार्गी होने के विपरीत राजस्थानी कवि बख्तावर जिनका समय संवत् 1800 के आसपास का माना जाता है, का मानना है कि मीरा को किसी धर्म–संप्रदाय में जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी बल्कि वे तो घर बैठे–बैठे ईश्वर को प्राप्त कर लेती हैं। उल्लेख इस प्रकार है –

"मीरा भैलांडे रंग छायो।
कोट भाण बांके महलां पीसे आनन्द अत ही रमायो।
शिव सनकादिक और ब्रह्मादिक वेद पुराण में गायो।
बख्तावर मीरां बडभागी घर बैठे वर पायो।।"13

स्त्री संतों में बडौदा निवासी राधाबाई महाराष्ट्रीय ब्राह्मणी थीं। अवधूत नाथ से दीक्षा ली थी और कृष्णार्पिता मीरांबाई पर 'मीरा महात्म्य' (1843 ई.) लिखा। इसमें मीरा के भक्त रूप का उल्लेख है। 'कुंवरीदासी' नामक कवियत्री के दोहों में भी मीरा के भक्त रूप का प्रकटीकरण है।

मीरांबाई के साथ केवल सगुण–निर्गुण की समस्या ही नहीं जुड़ी हुई है। संभवतः सभी संप्रदायों में उन्हें अपनी ओर खींचने की कोशिश की है। इस क्रम में इस भावना को पुष्ट करने वाली रचनाएँ रची गई हैं। इसी प्रकार की रचनाओं में

'मीरा–जंभाजी संवाद' नामक कविता नरसिंहपुर से प्राप्त एक गुटके में लिखी हुई है। इसमें विश्नोई संप्रदाय के प्रवर्तक जंभाजी, मीरा को ज्ञान देते हैं और अंत में मीरा 'सांचे तुम मुनिनाथ' कह कर मान लेती हैं। पद इस प्रकार है –

"आरंभ –

जंभाजी : मीरा तू नाम संत का जाप, सोहं विसनू, सोहं विसनू जाप।
मीरा : जंभाजी मन भाए मीरा गिरधारी प्रभू आप, मैं करती सोई जाप।
अंत
मीरा : साँचो सुँदर साँवरो, साँचे तुम मुनिनाथ।
साँचो देव निरंजना, संत नाम अब साथ।
मीरा सत्य नाम करै जाप। 14

सांप्रदायिक ग्रंथों की श्रेणी में रामस्नेही संप्रदाय का एक गुटका जो उदयपुर के रामद्वारा में संग्रहित है, में जेतराम नामक कवि के भजन संकलित हैं। इनमें मीरांबाई राम की सेविका हैं, भक्त व संत के रूप में दिखती हैं।

मीरांबाई को राजवंशों से अधिक आम जनता ने प्रेम किया था। मीरा के पदों में पीड़ा है जो कि लोक को अपनी ओर खींचती हैं। लोकप्रदत्त प्रेम का तात्पर्य कदापि यह नहीं लेना चाहिए कि मीरा उच्च वर्ग में निम्न समझी जाती थीं और उनके पद व भक्ति केवल निम्न वर्गों व भील आदि जनजातियों में ही ख्याति प्राप्त थे। उनकी भक्ति का सम्मान सभी वर्गों ने किया था। इसका श्रेष्ठ उदाहरण किशनगढ़ के महाराजा सावंत सिंह राठौड़ (1699–1766 ई.) हैं। नागरीदास इनका भक्त नाम था। इनकी रचना पद–प्रसंग–माला में मीरा संबंधी उल्लेख हैं। ये स्वयं वल्लभ संप्रदायी थे किंतु मीरा संबंधी इनके उल्लेख स्वतंत्र तथा सटीक हैं।

(क) पद – प्रबोधन माला का उल्लेख –

मेरे येई वेद व्यास।
श्री हरिबंशरु व्यास गदाधर परमानंद नंददास।।

....

तुलसीदास मीरा माधव अरु ऊभै नागरीदास।।

(ख) पद – प्रसंगमाला के उल्लेख

1. अथ अन्य पद–प्रसंग–मेड़तें मीरांबाई तिनकों राना के छोटे भाई सों ब्याही, यह प्रसिद्ध ही है। सो कितनेक दिन उपरांत काहू इमै राना के वा भाई को देहाँत भयो, अरु राना हुते सो मीरांबाई सों दुष पाय रहे ही हैं। ये वैष्णवनि को सतसंग करति। यातैं, वा समै राना ने कहाई, जो यह औसर है तुम भरता के संग सती होहु। तब मीरांबाई भगवत रंग आगै लगे है, त्यों ही लगे रहे। या समै कछू षेद मानी नाही, अरू या बात के उत्तर को एक विष्णुपद नया बनाय राना को लिषि पठायो। पद बहुत प्रसिद्ध भयो।। सो वह यह पद।।

"मीरां के रंग लग्यो हरी को और रंग सब अटक परी।
गिरधर गास्याँ सती न होस्याँ मन मोह्यो धननामी।।
जेठ–बहू को नातो नहीं राणाजी म्हे सेवग थे स्वामी।।
चूड़ो देवड़ो तिलक जु माला सीलवर्त्त सिंगार।।
और सिंगार भावै नाहिं राणाजी यों गुरु ग्यान हमार।।
कोई निंदो कोई बिंदो गुण गोविंदरा गास्याँ।।
जिण मारग वै संत पहूंता तिण मारण म्हे जास्याँ।।
चोरी करां न जीव संतावां कांई करसी म्हारो कोई।।
हसती चढ़ि गधै नहीं चढ़ां यातो बात न होई।।
राज करतां नरक पड़ेसी भोगीड़ा जम कै लीया।।
गिरधर धणी कंडूबो गिरधर मात पिता सुत भाई।।
ये शहारें म्हे ह्या हारें हो राणा जी यौं कहै मीरांबाई।।"

2. पुनः अन्य पद–प्रसंग। –मीरांबाई सों राना बहौत दुष पायै रहै। राना के घर की रीति तें इनके भिन्न रीत। यह भगवत संबंध सत्संग विशेष करै। देह संबंध को नातौ व्यौहार कछु न मानैं, राना बहुत समुझाय रहयो, निदान एक विष को प्यालो उनको पठयो, कह्यो चरनामृत को नाम लैकें दीजियो, उनकै प्रण है चरनामृत के नाम तैं पी ही जाँयगे, सो ऐसे ही भयो, जांनि बूझ पीयो, राना तो इनके मरिबे की राह देखत रहयो, अरु यह सांझ–मृदंग संग लैके

परमसंग सो एक नयो पद बनाय ठाकुर आगे गावत भये, पद बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद –

रानैजू विष दीनो हम जानी।
जान बूझि चरनामृत सुनि पियो नहिं बौरी भौरानी।।
कंचन कसत कसौटी जैसे तन रहयो बारह बानी।।
आपुन गिरधर न्याव कियो यह छान्यो दूधरु पानी।।
राना कोटिक बारौ जिहिं पर हौ तिंहि हाथ बिकानी।।
मीरा प्रभू गिरधर नागर कै चरन कमल लपटानी।।2।।

3. पुनः अन्य पद प्रसंग।। मीरांबाई की कई भाँति की चरचा निंदक जन राना आगै बहुत करन लागे, तब एक समै राना नैं अपने अंतःपुर की एक स्त्री कौ पढ़ायो। कहयो कि आधी राति उपरांत जहाँ वे होंय तंहा चली जाइये, काहू की हरकी मत रहिये। सो बानैं ऐसे ही कियो, मीरांबाई अटारी पर सोई सोई जगत ही सौंहे, चंद्रमा कौं देषि करि हरि प्रीतम के अंतराय को बिरह सहय सहत ही उनकी भांवनां करि–करि परी उसास लेत ही, इतने ही ये जाय ठाढ़ी भई। ताकूं मीरांबाई कह्यो तनकेक बैठिकै हमारो दुख सुनौ या समै हमकूं तुम बड़े श्रोता मिले, सो जद्यपि वह बिजाती ही, परंतु ज्यों कोऊ अति अधीर अनुरागी होय, तांकू बिजाती सजाती को ग्यान नांही रहै, पहि अपने चित मैं हैं सो कहैं ही कहै। यातैं वाके आगैं वही बेर एक पद बनाय बनाय कैं गांवन लगी, सो यह पद सुनि इनकी अरस्था देषि वह आई हुती सो परम अनुराग में मूरछित ह्वै गई। इनकी ही निकटपर्वी परम वैष्णवभई। फिरि राना के अंतःपुर में न गई। फिरि राना और काछू स्त्रीनि कौं इनपै पठावैं सोई नट जाइ, अरु कहै उनपै ज्यो–ज्यो जाय हैं, सो बावरी है जात हैं। तातैं हम न जांहिगी। यह बात इनकै बहुत प्रसिद्ध भई, सो पिछाली रात के समैं जा पद के सुनै तैं राना की सहचरी की उनमत दसा ह्वै गई, सो वह यह पद –

"सषी मेरी नींद नसांनी हो।
पिय को पंथ निहरातां सब रैन बिहानी।।
सषीयनि मिलि सीष दई मन एक न मानी।।
बिन देषे कल ना परै जिय ऐसी ठानी।।

अंग छीन व्याकुल भई मुष पिय पिय बानी।।
अंतर बेदन विरह की बहि पीर न जानी।।
ज्यों चातक धन कौं रहै मछरी बिन पानी।
मीरॉं व्याकुल बिरहिनी सुधि बुधि बिसरानी।।3।।

नगरीदास के उक्त उल्लेख तो महत्वपूर्ण हैं ही, पर उनके द्वारा उद्धृत पद एक प्रामाणिक हस्तलिखित परंपरा के अंश भी हैं।

4. पुनः अन्य पद प्रसंग।। राना को छोटो भाई मीरां को देह संबंध को भर्त्ता हो, सो ताको परलोक भयो, ता पीछै मीरांबाई गंगादिक तीरथ करिकै। अरु श्री वृन्दावन हू आये, वहाँ जीऊ गुसाईं जी को प्रण स्त्री के न देखिवे को छुटाय सब सों गुरु गोविंदवत सनमान सत्यसंग करि द्वारिका को चलें, ऊहाँ बास करिबै कैं लियैं, तहीं एक मारग में एक नयो पद बनायो, बहुत प्रसिद्ध भयो, सो वह यह पद –

राय श्री रनछोड़ दीज्यो द्वारिका को बास।।
संख चक्र गदा पद्म दरसें मिटै जम की त्रास।
सकल तीरथ गोमी के रहत नित निवास।।
संष झालर झांझ बाजै सदा सुष की रास।।
तज्यो देसरु बेसहू तजि तज्यो राना राज।।
दास मीरा सरन आवत तुम्हैं अब सब लाज।।4।।

5. पुनः प्रसंग।। सो या भांति मनोरथ करत यह पद गावत द्वारिका पहुंचे, तहाँ कोई दिन रहे। ता पीछौ मीरांबाई के संग प्रौहितादिक जे राना के लोक है, तिन कह्यो अब बहुत दिन भये है, अब देश कौं, चलो, राना की आग्या है, ऐसे द्वै तीन दिन तो कह्यौ, फिरि मीरांबाई परि धरना कियो, तब मीरा बाई ठाकुर रणछोडजू सौं विदा ह्वैबै को नांव लै मंदिर में अकेले ही जाय महाआरति सहित एक नयो पद बनाय गायो, सो वह यह पद –

"हरि हरिहो जनकी पीर।
द्रौपदी की लाज राषी तुम बढ़ायो चीर।
भक्ति कारन रूप नरसिंघ धरयो आप सरीर।

हरिन कस्यप मारि लीनौं धर्यो नांहिन धीर।।
बूडतैं गज ग्राह तार्यो कियो बाहिर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर दुष जहाँ तहाँ पीर।।4।। 21

सो यह पद गाये उतने न टरे, तब महा आरति प्रेमवस सहित एक और पद बनाय गायो,तब ही ठाकुर आप में उनकौं याही शरीर तैं लीन करि लीने। देह हू न रही, सो जा पद के गाये लीन भये, सो वह यह पद –

"सजन सुधि ज्यौं जानैं त्यों लीजै।
तुम बिन मेरैं और न कोई कृपा रावरी कीजै।।
द्यौस न भूष रैन नहिं निद्रा यह तन पल–पल छीजै।।
मीरा प्रभू गिरधर नागर अब मिलि बिछुरनि नहिं कीजै।।6।।

सोये दोऊ निकट द्वार कै इनकी परम चतुर वैष्णव सषी ने कंठ करि लीनै ,तथा लिखि लीने ते प्रसिद्ध भये।। 15

नागरीदास के उल्लेख महत्वपूर्ण हैं क्योंकि –

1. नागरीदास स्वयँ राठौड़ वंश के थे और राव दूदा के सगे भाई सूजाजी के वंशज थे। इस कारण समाज वंश के होने के कारण उन्होंने कई पारिवारिक बातों को तथा राठौड़ों की परंपरा को भलीभांति समझा होगा।

2. वल्लभ संप्रदायी थे अतः मीरा संबंधी अफवाहों को जानकारी भी थी अतः कहीं भी अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन नहीं किया है।

3. केवल साहित्य ही नहीं बल्कि कला के प्रत्येक क्षेत्र में कृष्ण भक्ति परंपरा को पुष्ट किया। चित्रकला की एक शैली 'बणी–ठणी' (किशनगढ़ शैली) ('बणी–ठणी' राजस्थानी में बनी सँवरी, नखरीली स्त्री को कहते हैं, बणी–ठणी शैली का प्रयोग उन्होंने राधा के चित्रों को बनाने में किया था।)

इन उल्लेखों से रोचक तथ्य यह खुलता है कि नागरी दास स्वयं वल्लभ संप्रदायी थे किंतु मीरा की निष्पक्ष व स्वतंत्र व्याख्या की है। नागरीदास बताते हैं कि

सती होने के सुझाव के विपरीत मीरांबाई ने भक्तिमार्ग को वरीयता दी। मध्यकालीन वल्लभ संप्रदायी नागरीदास मीरा के विद्रोह को समझते हैं तथा इस विद्रोह की मूल प्रेरक शक्ति भक्ति को भी। यह भक्ति का प्रभाव ही था कि हत्या के षड्यंत्र के बाद भी मीरा कविता करती हैं। प्रेममयी मीरा का यह जीवट नागरीदास श्रेष्ठता से उभारते हैं। प्रेम व भक्ति ही थी जब मीरा कृष्ण लीन हुई तब भी पद रचना हुई और उनकी सखी ने पदों को कंठ कर लिया। यह उल्लेख बताता है कि मीरा को भले ही राजाश्रय, धर्माश्रय न मिला हो किंतु लोकाश्रय मिला। वे लोकनिधि बनीं और लोकप्रिय हुईं। नागरीदास के उल्लेख मध्यकालीन समझ को बताते हैं कि किस प्रकार मीरा के पदों का संरक्षण हुआ।

संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथ 'भक्ति महात्म्य चरित्र' में मीरा के जीवन को बताया गया है। संस्कृत में लिखा गया, यह मीरा महात्म्य, संभवतः एकमात्र ग्रंथ है। मीरांबाई ने तो राजस्थानी, गुजराती और ब्रजभाषा से प्रभावित हो कर पद रचना की थी परंतु उनका महात्म्य वर्णन संस्कृत में है। महात्म्य वर्णन के क्रम में सुंदरदास कायस्थ का भी उल्लेख है। इन्होंने मीरांबाई पर वंदना लिखी थी। यथा–

श्री मीरा को करौं प्रणाम। हरि के भक्तन में सरनाम।।
तिनकौ प्रेम बरनि नहिं जाय। सागर तामें जात समाय।।

....

तिन किरपा ते भगति मैं पाओं। संगहि संग कुंज में आओं।।

मीरा विषयक जानकारी के लिए धार्मिक ग्रंथों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें मुख्य रूप से 'भक्तमाल' परंपरा के उल्लेख महत्वपूर्ण हैं। मीरा के संबंध में नाभादास कृत 'श्रीभक्तमाल' में एक उल्लेखनीय पद है। नाभादास के 'भक्तकाल' के बाद अनेक भक्तमाल लिखे गए थे। भक्तमाल की रचना के पीछे का उद्देश्य इस दोहे से स्पष्ट हो जाता है –

"मंगल आदि विचारि यह, वस्तु न और अनूप।
हरिजन के यश गावते, हरीजन मंगल रूप ।।

संतन मिलि निर्णय कियो, मथि पुराण इतिहास।
भजवेको दोई सुघर, कै हरि कै हरिदास।।
अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तन को यश गाव।
भव सागर के तरन को, नाहिंन आन उपाव।।" 16

नाभादासजी का वास्तविक नाम नारायण दास था। अग्रदास के शिष्य थे तथा गलता पहाड़ी (जयपुर) में रहते थे। इनकी दृष्टि में वर्णन करने लायक या तो स्वयं ईश्वर हैं या ईश्वर के भक्त। भक्तों के संबंध में इनके ज्ञान का बोध हमें भक्तमाल से होता है, जिसमें दो सौ से अधिक भक्तों का वर्णन किया गया है। सभी भक्तों का जीवन व भक्ति का परिचय काव्यात्मक सूत्रात्मकता के साथ हुआ है और इन सूत्रों की व्याख्या हम कई पृष्ठों में कर सकते हैं। शब्द एक भाव अनेक की दशा है। नाभादास जी ने मीरांबाई के संबंध में कहा है कि –

"लोक लाज, कुल –शृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलियुगहिं दिखायौ।।
निरअंकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ।
दुष्टनि दोष विचारि, मृत्यु को उद्दिन कीयौ।
बार न बांको भयो, गरल अमृत ज्यों पीयौ।
भक्ति–निशान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।।
लोक–लाज–कुल–शृंखला तजि, मीरां गिरधर भजी।।" 17

मीरा के जीवनवृत्त के साथ–साथ मीरा का निडर व्यवहार इन पंक्तियों से प्रकट होता है। ऐसी धारणा है कि त्रेता युग में ईश्वर प्राप्ति के लिए हजारों वर्षों की तपस्या करनी पड़ती थी। उससे द्वापर युग में भी यही स्थिति थी परंतु कलियुग में चूंकि पाप की अधिकता है अतः ईश्वर के स्मरण मात्र से ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाएगी। ऐसे घोर पापमय 'कलियुग' में मीरा गोपियों के समान प्रेममयी व भक्तिमय दिखती हैं। यह मीरा को भक्ति की पराकाष्ठा है। द्वितीयतः कलियुग के भक्तों का वर्णन किया जा रहा है अतः कलियुग शब्द का प्रयोग हुआ। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इससे भी मीरा को भक्तिपूर्ण होने के साथ–साथ विद्रोही भी दिखाया है।

यथा 'भक्ति निशान बजाय कै, काहू तै नाहिन लजी। लोकलाज, कुल शृंखला तजि मीरा गिरधर भजी'।

भक्त होने का तात्पर्य यह कतई नहीं होता कि भक्त में विद्रोह करने की क्षमता या चेतना ही न हो। भक्ति मूल रूप में प्रेम है और प्रेम ही भक्ति का आधार बिंदु। भक्त होना प्रेम का चरम रूप है। प्रेम का मुख्य लक्षण ताकत, चेतना व ऊर्जा देना है ना कि कमजोर या निरीह बनाना। ऐसी स्थितियों में यह कैसे संभव है कि जहाँ प्रेम हो वहाँ विद्रोह चेतना ना हो। **मीरा भक्त है और इसी कारण विद्रोही भी।** सिक्के के दो पहलुओं की तरह यह स्थिति दिखाती है। इसके केवल एक पक्ष को देखना हमारी दृष्टि की संकीर्णता है ना कि स्थितियों का दोष। संपूर्ण भक्तिकाल प्रेममय है। सूफी दर्शन, संत गत, सगुण–निगुण। किसी भी मत में प्रेम तत्व की प्रधानता मिलती है। यह प्रेम तत्व स्व से होकर सर्व और सर्व से ब्रह्म तक जाता है। प्रेम का आंतरिक रूप भक्त होने में है और बाहरी या सामाजिक रूप विद्रोही चेतना में।

वास्तव में भक्तिकालीन सभी संत मूल रूप में भक्त हैं और मुखर रूपों में विद्रोही चेतनामय हैं। इनका प्रेम भक्ति तत्व इनके विद्रोह को उभारने में सहायक है। अतः सभी संतो के केवल बाहरी रूप की बजाय आंतरिक दृष्टि को भी महत्व देना चाहिए।

प्रो. मैनेजर पाण्डेय मीरा के विद्रोह को भक्तिकाल की उपलब्धि मानते हैं। प्रेम तत्व को विद्रोह की प्रेरक शक्ति कहते हैं –"मीरा का विद्रोह अंधे के हाथ लगा बटेर नहीं है। वे अपने संघर्ष की परिस्थितियों के बारे में पूरी तरह सजग हैं। विरोधी शक्तियों के खूँखार स्वभाव और अपनी वास्तविक स्थितियों की पहचान के बाद ही उन्होंने कहा है कि 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनो, ज्याँ रण माँही सूरो।' उनका संघर्ष सचमुच असाधारण है। जीवन की बाजी लगाकर लड़ा जाने वाला यह युद्ध। संकल्प उनकी शक्ति का मुख्य स्रोत है। संकल्प के पीछे प्रेम में अटूट आस्था का बल है।" 18

इससे भी आगे बढ़कर आलोचना के अंक में सूरज हाड़ा के लेख में बताया गया है कि किस प्रकार से मीरा को भक्त बनने की कोशिश की गई। तात्पर्य यह है कि मानो भक्त होना व विद्रोही होना दो अलग–अलग बातें हों। यथा –"यों तो ये चरित्र आख्यान मीरा के भक्त रूप की प्रतिष्ठा और प्रचार–प्रसार के लिए ही जो लिखे गए हैं लेकिन इन में ऐसे संकेत भी मौजूद हैं, यह सिद्ध करते हैं कि मीरा अपने समय के संत–भक्तों से अलग थीं और उसने पितृसत्ता और राजसत्ता के विरुद्ध अपने विद्रोह को समाज में स्वीकार्य बनाने के लिए ही भक्ति का खास रूप गढ़ लिया था। यह भक्ति मध्यकालीन प्रचलित भक्ति के चौखटों से बाहर की थी और मीरा ने अपने स्त्री अस्तित्व को सार्थक करने के लिए ही इसको अविष्कृत किया था।"[19]

मीरा के विषय में यह कहना कि उन्हें भक्त बनाने की कोशिश की गई, नितांत गलत है। भक्तिकालीन 'भक्त' आज के प्रचलित अर्थों में भक्त से नितांत भिन्न है। अतः भक्त होने का अर्थ समझना भी जरूरी है। मूल रूप में कबीर भी भक्त ही हैं परंतु उतने ही विद्रोही भी। उन्होंने भी कभी यह उद्देश्य नहीं लिया था कि, विद्रोही चेतना को समाज में स्वीकार्य बनाने के लिए खास किस्म की भक्ति को गढ़ना पड़े। केवल समकालीन विमर्शों व एकांगी दृष्टि से इन भक्तिकालीन संतों का मूल्याँकन नहीं करना चाहिए।

भक्तमाल में नाभादास के उल्लेखों के बाद भक्तमाल की प्रियदास कृत 'भक्तिरस बोधिनी' टीका को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। नाभादास ढूँढाड़ (जयपुर) के थे और मेवाड़ की स्थितियों से परिचित थे किंतु प्रियादास मेवाड़ से दूर थे प्रियादास के मीरा संबंधी वर्णन किंवदंतियों व सुनी हुई घटनाओं के आधार पर आधारित हैं। प्रियादास की टीका में मीरा संबंधी उद्धरण इस प्रकार हैं–

टीका –

'मेरतौ' जन्मभूमि, भूमि हित नैन लगे,
पगे गिरिधारीलाल पिता ही के धाम मैं।
राना कै सगाई भई, करी ब्याह सामा नई,
गई मति बूड़ि, वा रँगीले घनश्याम मैं।।

भाँवर परत, मन साँवरे सरूप मांझ,
ताँवरे सी आवें चलिबै कौ पति ग्राम मैं।
पूछैं पिता माता 'पट आभरन लीजियै जू',
लोचन भरत नीर कहा काम दाम मैं।।1।।

'देवौ गिरिधारीलाल, जौ निहाल कियौ चाहौ,
और धन माल सब राखियै उठाय कै।'
बेटी अति प्यारी, प्रीति रंग चढ्यो भारी,
रोय मिली महतारी, कही 'लीजियै लढ़ाय कै'।।
डोला पधराय, दृग–दृग सों लगाय चलीं,
सुख न समाय चाय, प्रानपति पाय कै।
पहुँचीं भवन सासु देबी पै गवन, कियौ,
तिया अरु बर गँठजोरौ कर्यौ भाय कैं।।2।।

देबी के पुजायबे कौं, कियौ लै उपाय सासु,
बर पै पुजाइ, 'सुनि बधू पूजि' भाखियै।
बोली 'जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ',
और कौन न नवै एक ही अभिलाखियै।
'बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ,
करौ जिनि हठ सीस पायनि पै राखियै।'
कही बार–बार 'तुम यही निरधार जानौ,
वही सुकुमार जापै वारी नाखियै।।3।।

तब तौ खिसानी भई, अति जरि बरि गई,
गई पति पास 'यह बधू नहीं काम की।
अब ही जवाब दीयौ, कियौ अपमान मेरौ,
आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वास चाम की।।
राना सुनि कोप कर्यौ, धर्यौ हिये मारिबोई,
दई ठौर न्यारी, देखि रीझी मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गाय कै मल्हावै साधु,
संग ही सुहावै, जिन्हें लागी चाह श्याम की।।4।।

आय कै ननद कहै , 'गहै किन चेत भाभी?
साधुनि सों हेतु में कलंक लागै भारियै।
राना देसपती लाजै, बाप कुल रती जात,
मानि लीजै बात बेगि संग निरवारियै'।।
'लागे प्रान साधू संत, पावन अनंत सुख,
जाको दुख होय, ताको नीके करि टारियै'।
सुनिकै, कटोरा भरि गरल पठाय दियौ,
लियौ करि पान रंग रढ्यौ यों निहारियै।।5।।

गरल पठायौ, सो तौ सीस लै चढ़ायौ संग,
त्याग विष भारी, ताकी झार न संभारी है।
राना नै लगायौ चर, बैठे साधु ढिंग ढर,
तब ही खबर कर, मारौ यहै धारी है।।
राजै गिरिधारीलाल, तिनहीं सों रंग जाल,
बोलत, हँसत ख्याल, कान परी प्यारी है।
जाय कै सुनाई, भई अति चपलाई, आयौ,

लिए तरवार, दै किवार, खोलि न्यारी है।।6।।
'जाके संग रंगभीजि, करत प्रसंग नाना,
कहाँ वह नर गयौ बेगि दै बताइयै'।।
'आगे ही बिराजै, कछू तोसों नहीं लाजै, अभूँ,
देखि सुख साजै, आँखें खोलि दरसाइयौ'।।
भयोई खिसानौ राना, लिख्यौ चित्र भीत मानो,
उलटि पयानौ कियौ, नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूँ प्रभाव ऐ पै भाव में न भिद्यौ जाइ,
बिना हरिकृपा कहौ कैसे करि पाइयै।।7।।

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ,
कियौ यों प्रसंग 'मोसों अंग संग कीजियै।
आज्ञा मोंके दई आय लाल गिरिधारी, 'अहो,
सीस धरि लई, करि भोजन हूँ लीजियै।।

TH-17847

संतनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ,
'संक अब कौन की निसंक रस भीजियै'।
सेत मुख भयौ, विषैभाव सब गयौ, नयौ,
पाँयन पै आय, 'मोकों भक्तिदान दीजियै"।।8।।

रूप की निकाई भूप 'अकबर' भाई हिये,
लिये संग तानसेन देखिबे कों आयो है।
निरखि निहाल भयो, छबि गिरिधारीलाल,
पद सुखजाल एक, तब ही चढ़ायो है।।
वृन्दावन आई, जीवनगुसाँई जू सों मिलीं झिलीं,
तिया मुख देखिबे को पन लै छुटायो है।
देखि कुंज कुंज लाल प्यारी सुखपंज भरी,
घरी उर माँझ, आय देस, बन षायो है।।9।।

राना की मलीन मति, देखि, बसी द्वारावति,
रति गिरिधारीलाल, नित ही लड़ाइयै।
लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि,
अति दुख मानि, बिप्र श्रेणी लै पठाइयै।
बेगि लैकै आवौ मोकों प्रान दै जिवावौ अहो,
गये द्वार धरनौ दै बिनती तौ सुनाइयै।
सुनि बिदा होन गई राय रणछोर जू पै,
छाँडौं राखौ ही न लीन भई नहीं पाइयै।।10।" [20]

ऐसा लगता है मानो प्रियादास जी मीरांबाई की कथा सुना रहे हों और उसमें उनके बालपन की प्रीति, विवाह,देवी पूजन, साधु–संगति, विष-पान, अकबर–तानसेन भेंट, जीवगोस्वामी भेंट और द्वारिका यात्रा व मृत्यु का वर्णन है। प्रियादास जी ने मीरा में उल्लेखनीय सूचनायें दी हैं। मुख्यतः ससुराल पक्ष को कृष्ण पूजा से विरोध नहीं था बल्कि देवी पूजन करने से इंकार उचित नहीं लगा। फलस्वरूप मीरा को कष्ट उठाने पड़े। यह प्रलोभन कि देवी पूजन से सुहाग बढ़ता है। मीरा को लुभा नहीं पाया और श्रीकृष्ण से प्रेम को वे तत्काल स्वीकार लेती हैं। प्रियादास जी

महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के संप्रदाय के अनुयायी श्री मनोहरदास के शिष्य थे अतः इस घटना पर विशेष बल दिया गया है। इसी क्रम में आगे बढ़े तो मीरा साधु–संगत के लिए विद्रोह कर उठती है यहाँ मीरा की भक्ति ही विद्रोह को मुखर करती है। श्रीकृष्ण से मीरा का एकनिष्ठ प्रेम व समर्पण दिखाने के लिए साधु की घटना का विवरण भी दिया गया है, जो रति–क्रीड़ा करने के लिए आमंत्रित करता है और अंत में भक्तिदान ले कर जाता है। भक्ति के कारण ख्याति इतनी हो गई कि अकबर तक उनके दर्शन को पहुँचता है। जीवगोस्वामी से भेंट मीरा की बुद्धि को दर्शाता है। इन सभी प्रसंगों से मीरा की जो छवि उभरती है वह भक्तिमय, प्रेममयी, विद्रोही चेतना से युक्त, विदूषी स्त्री की उभरती है। प्रियादास के इन विवरणों से पता चलता है कि मध्यकालीन 'भक्त' का स्वरूप कैसा था और मध्यकाल भी मीरा के भक्ति के संग–संग चलने वाले विद्रोह को गहरे में समझता था।

प्रियदास की 'भक्ति रसबोधिनी' टीका के पश्चात् भक्तमालों की टीकाओं, टिप्पणियों और भावानुवादों की एक लंबी परंपरा मिलती है। इनमें से उल्लेखनीय कृति है वैष्णवदास की 'भक्तमाल का दृष्टांत'। वैष्णवदास प्रियादास के पौत्र थे। निम्बार्क संप्रदायी और वृंदावन निवासी थे। वैष्णवदास जी कृत 'भक्तमाल का दृष्टांत' में मीरा संबंधी उल्लेख इस प्रकार हैं –

भक्तमाल छप्पय–मीरांबाई जू प्रसंग

(क) *मीरां गिरधर भजी*// मीरा को गीरधर भज्यो।। न परयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।। आसामहो चरणरेणजुषामहं स्या वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।।

(ख) *सदृस गोपिका प्रेम*।। जैसे साहुकार का लड़का है भीत फोरि आया है।। चोर कहना नहिं।। कह भीचुके।। ऐसे गोपिन्ह ते अधिक नहीं पर अधिक है।।

टीका–कवित्त

(1) गई मति बूड़ि वा रंगीले घनश्याम मैं।। मारु।।

लेना सांवल नागर सागर व मुरली धुनि गरजै।।
वल्लभ रसिक तान लहरै गावत आवत सुर परजै।
मोर पक्ष करहु लैहु लैक लगी पूतरी लौं बरजै।।
रूपक हर हरि आन आव जनि नाव धरम की लरजै।।1।।
इन नैननि मधि मोहन सोहन मूरति आनि अमानी।।
धीरज धरम सरम सब भूले भूली नियम कहानी।।
वल्लभ रसिक कोउ कछु भाषौ मैं नेक न मन में आनी।।
हिय अटकी लटकी चटकीली पारा जु सुरंग सुहानी।।2।।

(2) टिप्पणी नहीं है

(3) देवी के पुजाइबे को।।

रज्यंति जं तवस्तत्र स्थान राजं गमा अपि।।
नंद गोपसुतं देवी पति में कुरु ते नम।।

गोपिन को भगवत् प्राप्ति की जिज्ञासा है। इनके साक्षात्कार पति श्री कृष्ण होय रहे हैं।

(4) अति जर वर गई।।

रही कैसे।। जैसे रसी (रस्सी) जरै।। वाको आकार रहै।। ऐसे रही।। जिनै लागी चाह स्याम की।। कृष्ण भक्त नातेसत्संग करै।। वेगि संग निरवारियै।।

जिनकी देह नेह परिपूरन ते जगमगात जग माहीं।।
जिन दरसै तिनि परसै चिकने रोम रोम ह्वै जाहीं।।
नर पशु दाग लगत उर जिनकी बातैं सुनत डेंराहीं।।
वल्लभ रसिक निसंक अंक भरि भरि तिनसौं लिपटाहीं।।

(5) उदाबाई नन्द सो कहा :

दोहा–मीन मारि जल धोई षाये अधिक पीयास।

कवित्त – तूतो निसि बासर प्रान मोमे राहत तातें।
तिनती करत सो न क्यौं हू बिसरायबी।।
हौं तौ जरि जैहौं ज्वाल जालनि पै री मोपै
कैसे ससि जैहे बिरहाग की बलायबी।।
कहैं कवि चिंतामनि हे रे बयारि रूप
पाछले सनेह मोहि तहाँ पहुँचायबी।।
कीजियें उपाय सोई प्यारे धरै जहाँ पाँय
षेह भये देह मरी तहाँ पहुँचायबी।।

जाद्रसी भावना जत्रसी धी भवती तादृसी।। तुलयामि लवेनापि।।1।।
अर्चे विस्मोसिलाधी गुरुसुनरमति वैष्णवो जाति बुद्धिः।।
अर्चावतारी–पादाना वैष्णवोत्पति चिंतनं।।
मात्र योनिपरीक्षायाँ तुल्यामाहु मनीक्षितां।।

(6) गरल पठाय दियो :

राना तो बड़ो भक्त है और तो भक्त छुछि सो।।
चरनामृत देहै यह कटोरा भर देहै।।

(7) आखै षोलि दरसाईयौ :

राना ने रसथईनी को बांधा। रसाइन सीषा चाहै सो वह बतावै नहीं। नित्य मारने को उद्योग करै। रात्री को सखा का रूप करिकै सेवा करै। जीस रोज मारन की ठीक पड़ी आजू नै बताबै तो कल्हि मारौ। जिस राजै सखा को बताया सो सेवा सो पाया। बिन सेबा चाहै तो नहीं।।

(8) संब अब कौन की :

चेरोजोनवनी तस्य जारोवल्लभजोषितां।।
ध्येयः सदैव साधूनां चोरजारसिरोमने।।
देस काल पात्र पाय विस ही य है।।

(9) रूप की निकाई भूप अकबर भाई :

बिलायत से पात्साह ने हिंद के पात्साह को लिख्यो कि अपने देश का मेवा सुंदर सरूप होय सो लिखियो। तब लिखा वृजवासी नंद ग्वाल को फरजंद एक कन्हैया नाम है जाकै रूप के ऊपर अनेक ईस्त्री बावली भई हैं। और टेड़ी एक फल बड़ा मेवा होय है सो पथिकन को बरबस अटकावै है। कहै कि षाय कैं जावे। **सो उन्ह के मत में भी कन्हैया सुंदर है। सो देखन अकबर पात्साह तानसेन समेत गीरधारी जी छवि की मगन हो गया।**

(10) पद सुष जाल एक तब ही चढ़ायो है :

पद –

प्यारी के चिहुर विथुरे मानौं धाराधर की स्याम घटा उनई।
ता मधि पुहुप छुटि परैं जैसे बड़ी बड़ी बूँदे।।
ता मध्य मुक्ता मांग बग पांति तरुण अलक बिच बिच कौंधति विज्जु लता सी
नेत्र कंजरीं। पीक बोलत बोलै रुंदै।
लाला सारि हरि की रमघान की घूंघट करि चली तरकै,
पीठ पाछे ते सोहै लाल मुनीया सी कंचुकी तनी की फूंदै।
मेहदी सुं आरक्त नष वीर बहुटी सी, **ऐसी पावस बनिता मिली।**
मीरां लाल गीरधर कुं लै काम प्रीति हार गूंदै।।1।।
यह पद तानसेन समेत अकबर आय चढ़ायो।।

(11) वृंदावन आय गोसाईं –

ठही बूझत फीरै वृंदावन में कोउ मसाल है।।
कोई ने कहा आजू तौ जीवगुसांई है।।
तिया मुष देषवे को पन ले छुड़ायो है – माता स्वस्रा दुहिताच नोविवक्तासनं भवेत।। बलवान् इंद्रिय श्रामंविद्वांममतिवकषित।

(12) रति गीरधारीलाल नित ही लड़ाइयै– कवित्त –

सांझ सबेरो अंधेरो उजेरो अकेले दुकेले वही रस छाक्यो।।

आइवो छोड़ो न तेरी गली को जो लोगन्ह वाक कुवाक हूँ भाक्यो।।
दीन भयो हम सी न हूँ सो आए कान्ह समान सबै करि छाक्यो।।
पौरि लौ आइकै अंग लषाय कै तै सुषदायक नीके न ताक्यौ।।1।।

आत्मानं चिंतये तत्र तासां मध्ये मनोरमां।।
रूप्योवनसंपन्ना किशोरि प्रमदावति।।

दोहा –

प्रेम एक एक चित्र सौ एकै संग बिकाइ।।
गंधी की सोधे नहीं जन जन हाथ बिकाई।।
कबहूँ रनकट प्रेम सो सीषो लाल विवेक।।
जैसौ नौलष कावरू पै दरवाजो एक।।

(13) सुनि बिदा होन गई –

पद –

राय श्री रनछोर दीजै द्वारिका को वास।।
संष चक्र गदा पदुम दरसै मिटै जम की त्रास।।
सकल तीरथ गोमी के रहत नित्य निवास।।
संष माल रिमांमी बाजै सदा सुख की रास।।
दास मीरा सरन गिरिधर तुम्है अब सभ लाज।।

(14) छाड़ौ राषौ ही न लीन भई –

पद –

हे हरि हरहु जनकी भीर।
द्रोपदी की लाज राषी तुम बढ़ायो चीर।।
भक्त कारन रूप नरहरि धरयो आय सरीर।।
हिरनकस्यप मारि लीन्यो धरयो नाहिन धीर।।
बूड़ते गज ग्राह तारयो कियो बाहर नीर।।
दास मीरां लाल गिरधर दुष जहाँ तहाँ पीर।।

सुजन सुधि ज्यौं ज्यौं लीजै।

तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरी कैजै।
दिवस न भूष रैन नहिं निद्रा येह तन पल पल छीजै।
मीरा लाल गिरधर नागर अब मिली बिछुरन नहि कीजै।

या पद की छाप परत संते रनछोड़ जू आपु मैं समाय लिया सदेही।।"21

उन उल्लेखों से महत्वपूर्ण तथ्य यह निकल कर आता है कि देवी पूजन से इंकार के बाद मीरा की ग्लानि बोध से ग्रसित नहीं थी बल्कि ऐसे रही जैसे रस्सी जल जाय पर बल ना जाय।

इससे भी आगे उनके एक निष्ठ प्रेम की संवेदना सूरदास की गोपियों से मिलती है। मीरा कहती है कि प्रेम एक है और एक के ही हाथ बिकता है, गंधिक का सा सौदा नहीं कि जन–जन के हाथ बिक जाए। इसी संवेदना को सूरदास की गोपियाँ उद्धव को समझाते हुए यूँ कहती हैं कि उद्धव् मन दस–बीस नहीं है। एक मन था जो श्याम के साथ ही चला गया सो अब तुम्हारे निर्गुण से कैसे मन लगायें।

मीरा के प्रेम की संवेदना, विद्रोह चेतना को भली भाँति प्रकट करने में ये उदाहरण महत्वपूर्ण हैं।

भक्तमाल के क्रम में संत राधौदास कृत 'भक्तमाल' व 'टीका' प्रसिद्ध हैं। ये दादू के शिष्य परंपरा में बड़े सुंदरदास जी के शिष्य प्रहलाददास के पौत्र–शिष्य थे। इन पर नाभादास के भक्तमाल का गहरा प्रभाव था। राधौदास जी संत परंपरा के अनुयायी थी अतः मीरा के इष्ट देवता को उन्होंने कृष्ण की अपेक्षा राम कह दिया है। वास्तव में मध्यकालीन व्यापक लोकभक्ति में इस तरह के प्रयोग सामान्य थे। राधौदास संत परंपरा के अनुयायी थे किंतु मीरा संबंधी उनके उल्लेख काफ़ी हद तक यथार्थवादी हैं और स्वतंत्र हैं। उनके उल्लेख इस प्रकार हैं –

छापै :

लोक बेद कुल जगतसुख, मुचि मीरा श्रीहरि भजे।

गोपिन की सी प्रीति, रीति कलि–कलि दिखाई।
रसिकराइ जस गाई, निडर रही संत समाई।
रीनै रोस उपाइ, जहर कौ प्यालो दीन्हौं।
रोम खुस्यौ नहीं येक, मांनि चरनामृत लीन्हौं।
नोबति भक्ति धुराई कै, पति सो गिरधर ही सजे।
लोक बेद कुल जगत सुख, मुचि मीरां श्री हरि भजे। 214 !

मनहर छंद –

रांमजी की भक्ति न भावै काहू दुष्टन कौं,
मीरां भई बैष्णुं जहैर दीन्हौं जांनि कैं।
रांनौ कहै मारै लाज, मारि डारौ याहि आज,
आप करै कीरतन संत बैठे आंनि कैं।
प्रेम मधि पीयो बिस पद गाये अह निस,
भै न व्याप्यौ नैंक हूं व लीन्हौं दुख मांनि कैं।
राधो कहै रांनौमुखि बैरी श्रब राजलोक,
मीरां बाई मगन, भरोसे चक्रपानि कैं। 215 [22]

इस वर्णन को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है मानों नाभादास के ही उल्लेखों को कुछ बदलाव के साथ पढ़ा जा रहा हो।

भक्तमाल परंपरा में अंतिम उल्लेख राधौदास पर चतुरदास अथवा ध्रुवदास की टीका का किया जा सकता है। उन्होंने लिखा तो यह है कि जिस प्रकार नारायणदास के भक्तमाल पर प्रियादास ने टीका लिखी, उसी प्रकार राधवदास की कृति पर मैंने लिखी, पर वस्तुतः यह टीका प्रियादास की टीका के दस कवित्तों का दस सवैयों में रूपांतर मात्र हैं मौलिक दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्व ही नहीं है। सी.एल. प्रभात का कहना है कि चत्रदास संतमत के थे और इनके समय में मीरा को संत मत का भी घोषित करने का प्रयत्न किया जाने लगा था, पर फिर भी इन्होंने परंपरागत अनुश्रुतियों का ही अनुसरण किया था। अतः गरीबदास के समय

से प्रारंभ होने वाली संत संप्रदाय की जन्म लेती हुई नई जनश्रुतियों में से प्राचीन तथा नवीन अंशों को अलग करने में इनके उल्लेख विशेष उपादेय हैं।" 23

मीरा संबंधी उल्लेख इस प्रकार हैं –

टीका (इदव छंद)

मात पिता जनमीं पुर मेड़त प्रीति लगी हरि पीहर मांही।
राँनहि जाइ सगाइ करावत ब्याहन आवत भावत नांहीं।।
फेर फिरावत बा न सुहावत, यौं मन में पति साथि न जांहीं।
देन लगे पितमात आभूषन, नैंन भरे जल मोहि न चांही।।1।।

द्यौ गिरिधारिहि लाल निहारन बेस अभूषन बेग उठावौ।।
मातापिता सु सुता अति है प्रिय रोय दये प्रभु लेहु लड़ावै।।
पाइ महासुष देषत है मुख डोलहि मैं बयठाइ चलावै।
धांमहि पौंचत मात पुजावत सास करावत गांठि जुरावौ।।2।।

मात पुजाइ लई सुत पैं पुनि पूजि बह अब सास कही है।
सीस नवै मम श्री गिरिधारिहि आन न मानत नाथ वही है।
होत सुहागिणि याहिक पूजत टेक तजौ सिर नाई मही है।
एक नवै हरि और न नावत मानत क्यूँ नहिं बुद्धि वही है।।3।।

होइ उदास भरै उर सास गई पति पास बहू नाहिं आछी।
मानत नैं अब फेरि गिनै कब केति कहौ फिरि आत न पाछी।
रोस कर्‌यौ नृप ठौर जुदी दइ रीझि लई वह नाचन काछी।
नृत्य करै उर लाल धरै सतसंग बरै सब है जन साछी।।4।।

आइ नणँद कहै सुनि भाभिहि साधुन संग निवारि भजीजे।
लाजत है नृप तासु बड़ौ कुल लाजत द्वै वंश बेगि तजीजे।।
संत हमारहि जीवन मानस तारत द्वै कुल सत्य मनीजे।
जाई कही तब झैर पठावत लै चरनांमृत पांन करीजै।।4।।

सीस नवाई कै पीत भई विष संतन छोड़न है दुष भारी।
भूप कहै भृति चौकस राषहु आइ कनै जन बोलत मारी।।
स्याँमहि सौं बतलात सुनी तब जाइ कही अब है सत यारी।
सथे सुनिकैं तरबारि लई कर दौरि गयो पट षोलि निहारी।।6।।

बोलत हौस गयो कत मानंस देहु लषाइ न मारत तोही।
येह षरे कछू नांहि डरे चित लेत हरे किन बाहत मोही।।
भूप लजाइ रह्यौ जड़ होइर ऊठि गयो तजिकैं उर छोही।
देषि प्रताप न मानत आप रहै उर ताप करै हरि बोही।।7।।

संतन भेष करौ विषई नर आइ कही मम संग करीजे।
लाल दई यह आइस जावहु मांनि लई अब भोजन लीजे।।
सेज बिछावत साधु सभा बिचि टेरि लियौ तब कारिज कीजै।
देषित ही मुष सेत भयो पगि जाइ नयौ अब सिष्षा मनीजे।।8।।

भूप अकबर रूप सुन्यौ अति तानहिसेन लिये चलि आयो।
देषि कुस्याल भयो छबि लालहि एक सबद्द बनाइ सुनायौ।।
जा बृज जीव मिली पन हौ तिय देषतनैं मुष ताहि छुड़ायौ।
कुंजन कुंज निहारि बिहारिहि आइ रु देस बनैं बन गायौ।।9।।

भूपति बुद्धि असुद्ध लषी अति द्वारवती बसि लाल लड़ाये।
पेटि जलंध्र होत भयो नृप जानि महादुष बिप्र षिनाये।।।
लैकरि आबहु मोहि जिवावहु बेगि गये समचार सुनाये।
होन बिदा चलि ठाकुर पैं मुष मांहि लई तुछ चीर रहाये।।10।।24

मेवाड़ की राजवधु, कृष्णार्पिता मीरा की छवि लोकप्रिय केवल इसलिए हुई थी क्योंकि वह लोक की बात करती थी। लोक की भाषा, सुख–दुख नारी मन की पीड़ाएँ और व्यक्तिमन की भावनाएँ वह गाती थीं। कालिदास की तरह अपनी भावनाओं का संदेश पहुँचाने के लिए उसे मेघों का सहारा लेने की आवश्यकता न थी। उसने जो कहा सीधे ईश्वर से कहा। एक स्वस्थ सोच मीरा में विद्यमान थी

जिसमें किसी भी स्तर पर कोई भेदभाव, मतांधता या कर्मकाण्ड्यि पद्धति नहीं थी। ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित व्यक्ति जब अपने ही अस्तित्व को महत्व नहीं देता तब भिन्न–भिन्न संप्रदायों का क्या औचित्य? संप्रदायों में बंध कर या इनकी मार्फत मीरा अपने प्रेम का निवेदन और विरह की व्यथा प्रकट नहीं करती है। प्रेम का सीधा सा व्यवहार वह अपनाती है। प्रत्यक्ष संबोधनों को प्रयोग में लाकर कृष्ण तक सीधे अपनी बात पहुँचाती है।

प्रेम ही मीरा का जीवन, जीवन दर्शन, मूल्य, औचित्य, मौलिकता, लाज और मृत्यु है। उसके प्रेम में शुष्क दार्शनिकता या कोरा पांडित्य प्रदर्शन नहीं था बल्कि संयोग–वियोग की कोमल भावनाएँ थीं।

जहाँ तक मीरा के काल में चल रहे विभिन्न संप्रदायों की बात है उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय था। वल्लभ संप्रदाय में मीरा दीक्षित नहीं हुई थी क्योंकि उसे महाप्रभु वल्लभाचार्य में आपस कुंवरिबाई की भांति कृष्ण के दर्शन नहीं होते। एक तरह से मीरा वल्लभ संप्रदाय के प्रभामण्डल को स्वीकार नहीं करती और अपनी राह पर चलती रहती है। वल्लभ संप्रदाय की दृष्टि में जो भक्त पुष्टिमार्गी वैष्णव नहीं हो तो उसके वैष्णव होने में ही संदेह है, परंतु मीरा इन बातों से नितांत दूर थी। मीरा की भक्ति सामान्य लोकभक्ति थी। मीरा की यही भक्ति जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय थी अतः वल्लभ संप्रदायी उसे दीक्षा देकर अपने साथ संबद्ध करना चाहते थे। सभी तरह के प्रयासों के बावजूद मीरा इससे दूर ही रहीं फलस्वरूप वल्लभ संप्रदायी ग्रंथ चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता में मीरा संबंधी उल्लेख कटुतापूर्ण है।

चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता में मीरा के संबंध में निम्न उल्लेख हैं –

(1) **गोविंद दुबे साचोरा ब्राह्मण तिनकी वार्त्ता और एक समय गोविंद मीरांबाई के घर हुते तहाँ मीरांबाई सो भगवद्वात्ता करत अटके।**

तब श्री आचार्यजी ने सुनीं जो गोविंद मीरांबाई के घर उतरे हैं सो अटके हैं, तब श्री गोसांईजी ने एक श्लोक लिखि पठायो, सो एक ब्रजवासी के हाथ पठायो।

त बवह ब्रजवासी चल्यौ सो वहाँ जाय पहुँचौ। ता समय गोविंद दुबे संध्यावंदन करत हुते। तब वह ब्रजवासी ने आय के वह पत्र दीनो सोपत्र बांचि के गोविंद दुबे तत्काल उठे। तब मीरांबाई ने बहुत समाधान कीयो परि गोविंद दुबे ने फिर पाछे न देख्यो। प्रसंग ।।2।।

(2) अथ मीरांबाई के पुरोहित रामदास तिनकी वार्त्ता

सो एक दिन मीरांबाई के श्री ठाकुर के आगे रामदासजी कीर्तन करत हुते। सो रामदासजी श्री आचार्यजी महाप्रभुन के पद गावत हुते, *तब मीरांबाई बोली 'जो दूसरो पद श्री ठाकुरजी को गावो' तब रामदासजी ने कह्यो मीरांबाई सों 'जो अरे दारी रांड यह कौन को पद है? यह कहा तेरे खसम को मूड़ है। जा आज सें ये तेरो मुँहडो कबहूँ न देखूंगौ।* तब तहाँ से सब कुटुम्ब को लेके रामदासजी उठि चले। तब मीरांबाई ने बहुतेरो कह्यौ, परि रामदासजी रहे नाहीं, पाछे फिर के बाको मुख न देख्यो। ऐसे अपने प्रभून सों अनुरक्त भये सो वा दिन से मीरांबाई को मुख न देख्यो, वाकी वृत्ति छोड़ दीनी, फेरि वाके गांव के आगे होय के निकसे नाहीं। मीरांबाई ने बहुत बुलाए परि वे रामदासजी आये नाहीं, तब घर बैठ भेट पठई सोऊ फेरि दीनी और कह्यो जो रॉड तेरो श्री आचार्यजी महाप्रभून ऊपर समत्व नाहीं जो हमको तेरी वृत्ति कहा करनी है। हमारे तो श्री आचार्यजी महाप्रभून सर्वस्व हैं, हम तो उनके हैं, उन बिना हमारे सर्वस्व त्याग करनो, उनके चरणारबिंद को आश्रय राखनो, ऐसी वृत्ति बहुतेरी होयगी। वे रामदास श्री आजाचार्यजी महाप्रभून के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हैं, ताते इनकी वार्ता कहाँ तांई लिखिये।। प्रसंग 1।। वैष्णव 54।।

(3) अथ कृष्णदास अधिकारी निकी वार्त्ता

सो वे कृष्णदास शूद्र एक बेर द्वारिका गये हुते। सो श्री रणछोड़जी के दर्शन करिके वहाँ से चले। सो आपन मीरांबाई के गांव आये। सो वे कृष्णदास मीरांबाई के घर गये तहाँ हरिवंश व्यास आदिदे विशेषसह वैष्णव हुते। सो काहू को आये आठ दिन काहू को आये दश दिन काहू को आये पंद्रह दिन भये हुते। तिनकी बिदा न भई हुती और कृष्णदास ने तौ आवत ही कही जो हूँ तो चलूंगो तब मीरांबाई ने

कही जो बैठो। तब कितनेक महौर श्रीनाथजी को देन लागी। सो कृष्णदास ने न लीनी और कह्यो जो तू श्री आचार्यजी महाप्रभून की सेवक नाहीं होत ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छुवेंगे नाहीं। सो ऐसे कहिं के कृष्णदास उहाँ ते उठि चले। सो आगे सब आये। तब एक वैष्णव ने कह्यो जु तुमने श्रीनाथजी की भेंट नहीं लीनी। तब कृष्णदास ने कह्यो जो भेंट की कहा है। परि मीरांबाई के यहाँ जितने सेवक बैठे हुते तिन सबन की नाक नीचे करके भेट फेरी है। इतने इकठौरे कहाँ मिलते। यह हूँ जानेंगे जो एक बेर शूद्र श्री आचार्यजी महाप्रभून को सेवक आयो हुतो ताने भेंट न लीनी तो तिनके गुरु की कहा बात होयगी।25

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इनमें मुख्य बिंदु मीरा नहीं बल्कि वल्लभचार्य के शिष्य हैं। जिनको गुरु भक्ति और निष्ठा प्रदर्शित करने के लिए मीरा का अपमान और अवहेलना करते दिखाया है। इन वार्त्ताओं से स्पष्टतः ही यह समझ में आता है कि मीरा क्यों नहीं दीक्षित हुई। वास्तव में मीरा का दीक्षा की आवश्यकता ही नहीं थी। इतनी अधिक घृणा, क्रोध, तिरस्कार को सहन कर जाना मीरा के व्यक्तित्व की गंभीरता की पहचान है। विपरीत परिस्थितियों में भी चित्त पर धैर्य धारण करना मीरा की महानता थी। यह किसी कुशल राजनीतिज्ञ का सा कार्य नहीं दिखता जिसका आरोप मीरा पर लगता है बल्कि मीरा के व्यक्तित्व की गहराई व समझदारी प्रकट होती है।

इसी प्रकार से दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता में भी यही प्रक्रिया दिखती है। उल्लेख इस प्रकार हैं –

1. श्री गुसांई जी के सेवक कुँवर बाई, तिनकी वार्ता : स वे अजब कुँवर बाई मेड़ते में रहती हती मीराबई की देवरानी हती और उहाँ एक दिन श्री गुंसाई जी पधारे जब अजब कुँवर बाई कूँ साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भए। जब अजब कुँवर बाई श्री गुंसाई जी की सेवक भई और अष्ट प्रहर श्री गुंसाई जी की ऐसी दशा देख के चार दिन उहाँ बिराजै और अजब कुँवर बाई कूँ पादुका जी पधराय दीये तब अजब कुँवर बाई शुद्ध पुष्टिमार्ग की रीति प्रमाणें

सेवा करन लागी और श्री नाथ जी अजब कुँवर बाई के संग नित्य चोपर खेलते। अजब कुँवर बाई की भक्ति से प्रसन्न हो श्रीनाथ जी ने सदा मेवाड़ में रहने का वचन दिया जिसके कारण वे अब तक मेवाड़ा में विराजे हैं।

2. श्री गुसांई जी के सेवक हरिदास बनिया, तिनकी वार्त्ता : सो वे हरिदास बनिया मेरता गाम में रहते। वा गाम में एक ही वैष्णव हते और वा गाम को राजा जैमल हो सो स्मार्त धर्म में हतो और एकादशी पहली करते हते। और जैमल राजा की बेन को घर हरिदास बनिया के सामने हतो। सो जब श्री गुंसाई ही हरिदास के घर पधारे हत तब जैमल की बेन कूँ बारी मे सूँ श्री गुंसाई जी के साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम के दर्शन भये। जब जैमल की बेन ने पत्र द्वारा सेवक भई काहे तें वे पड़दा में से बाहर नहीं निकसते जांसू पत्र द्वारा सेवक भए। 26

अजबकुंवारि बाई मीरा की देवरानी थी और वल्लभाचार्य की शिष्या हुई। इन्होंने मीरा से भी दीक्षा लेने को कहा किंतु मीरा दीक्षित नहीं हुई। इस संदर्भ में मीरा की आलोचना अप्रत्यक्ष रूप से मिलती है। सभी प्रयासों के बाद भी जब मीरा पुष्टिमार्गी नहीं बनी तब जैमल की बैन वार्त्ता में पत्र द्वारा शिष्या बनने का प्रसंग है। यह 'जैमल' मेहता निवासी जयमल हैं अथवा नहीं इसमें संदिग्धता हैं परंतु इस प्रकार की वार्त्ता और यह लोक में प्रसारित करवाना कि मीरा पत्र के माध्यम से शिष्या बनीं, महत्वपूर्ण है। पीतांबर दत्त बड़थ्वाल के अनुसार "वार्त्ता के दिए हुए उद्धरणों में मीरांबाई के महत्व पर बहुत प्रकाश पड़ता है। वह सब संतों का, संप्रदाय भेद का विचार किए बिना, समान रूप से आदर करती थीं। उसकी बड़ी उदार धार्मिक भावना थी। उसके विरोधियों ने भी उससे कटुवचन नहीं कहलाए। वह बड़ी सहिष्णु थी। कृष्णदास ने उसे उद्विग्न नहीं कर सके। रामदास को तो वह घर बैठे वृत्ति देने को तैयार थी। उस के महत्व को वल्लभाचार्य जी स्वयं जाते होंगे। किसी सामान्य व्यक्ति को दीक्षा के लिए तैयार न करा सकने पर उनके भक्तों को उतनी खीझ न होती जितनी 'वार्त्ता' से प्रगट है।" 27

वास्तव में, यह समझना आवश्यक है कि मीरा वर्तमान की खोज नहीं है बल्कि प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण रही है। उनके महत्व को आज के दौर में ही समझा गया हो ऐसा कतई नहीं है बल्कि मीरा कितनी महत्वपूर्ण थी इसका सशक्त उल्लेख है, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से हो वार्त्ताओं में मिलता है। समकालीन कवि व ग्रंथ, भक्तमाल भी उन्हें उपेक्षित नहीं कर पाये हैं।

वास्तव में मीरा अपने समय में भी उतनी ही महत्वपूर्ण थीं जितनी आज के विमर्शों में हैं। तत्कालीन संप्रदाय उन्हें शिक्षित करने का प्रयास नहीं करता यदि वे हाशिये की होतीं। संप्रदाय से न जुड़े होने के बाद भी मीरा महत्वपूर्ण रहीं, लोक स्मृति, लोक कण्ठ में रहीं यह अधिक महत्वपूर्ण है। कबीर के निर्गुण पदों की तरह मीरा के हरिजस भी मृत्यु अवसर पर गाए जाते हैं। पीड़ा और मुक्ति की गायिका मीरा कभी भी गौण रही हों ऐसा नहीं हुआ है।

मीरांबाई की लोकप्रियता के कारण भारत की अनेक भाषाओं में मीरा चरित्र भी लिखे गए थे। राजस्थानी में ही नहीं बल्कि गुजराती, मराठी, संस्कृत, बंगला आदि में ग्रंथ मिलते हैं।

महाराष्ट्र में धूलिया के 'रामदासी संशोधन नामक' संग्रहालय में एक हस्तलिखित पोथी में 'चरित्र मीरांबाई' नामक एक छोटी सी रचना दी हुई है। मीरा संबंधी इसमें निम्न उल्लेख दिए गए हैं –

"संता चा दास बोली सीपी नामा
त्याने लील्हा प्रेमा सत्य भज
ईती मीरांबाई चरित्र संपूर्णमस्त
विठ्ठल हरी विठ्ठल हरी विठ्ठल हरी।।"28

इसी प्रकार रामस्नेही संप्रदाय से प्रभावित परची जिसे सुखसारण जी महाराज ने लिखा था, भी उल्लेखनीय है। इसमें मीरा को रामस्नेही रंग में रंगा हुआ बताया गया है। परची का आरंभ इस प्रकार हुआ है –

"बंदू सतगुरु साचा देव, ज्यों मोय दीयौ भक्ति को भेष।।

बूंद राम राम महाराज, सुमरया सरै मनोरथ काज
बंदू अनंत कोटि निज संत, आद अंतमध भरो अनंत
राम सतगुरु किरपा कीज्यो करुं भगत जस आग्या कीज्यो
बार बार संतन सिर नाऊं, मीराबई की परची गाऊं।।" 29

गुजराती के प्रख्यात कवि दयाराम कृत मीरा चरित्र भी उल्लेखनीय हैं। इनका जीवनकाल 1667–1852 ई. है।' यह रचना विशेष प्राचीन तो नहीं परंतु इससे यह ज्ञात होता है कि इस काल तक मीरा धर्म व जनश्रुतियों से बाहर आ कर साहित्य में भी महत्वपूर्ण होने लगीं थीं। दयाराम बल्लभ संप्रदायी थे किंतु इन्होंने मीरा चरित्र लिखा। यह इस बात का द्योतक है कि जहाँ वार्त्ताओं में मीरा की आलोचना हुई थी वहीं इस इस काल तक आते–आते मीरा का महत्व वल्लभ संप्रदायी भी मानने लगे थे। जैसे नागरीदास व गुजराती कवि दयाराम आदि।

मीरांबाई के महत्व का बोध इस बात से भी होता है कि गुरु ग्रंथ साहिब के भाई बन्नू के संस्करण में मीरा का एक पद मिलता है। विक्रम संवत् 1660 में श्री गुरु अर्जुनदेव ने 'गुरुद्वारा रामसर' के पावन तट पर गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन किया था। इसके तीन संस्करण मिलते हैं। पहला संस्करण गुरु अर्जुनदेव जी ने तैयार किया था और भाई गुरुदास ने इसकी प्रति तैयार की। गुरुग्रंथ साहिब का दूसरा संस्करण भाई बन्नू ने तैयार किया था। वे अर्जुनदेव की प्रति की एक प्रतिलिपि को जिल्द बनवाने के लिए लाहौर ले गए। इसके आधार पर उन्होंने स्वयं भी एक प्रति तैयार की और उसमें कुछ रचनाएँ जोड़ दीं। इस प्रति में भी राग मारु के अंतर्गत मीरांबाई का वही पद दिया गया है।

वाणी मीरांबाई।। मन हमारो बांधयो माई
कँवल नैन अपने गुन
तीखण तीर बोधि शरीर दूरि गया माई।।
लाग्यौ तब जान्यौ नाहिं अब ना सहिओ जाई री माई।
तंत मंत आउखद करुऊ तरु पीर ना जाई
निकट हो तुम दूर नहीं बेगि मिलो आई

मीरा गिरधर स्वामी दयाल तन की तपन बुझाई री माई।।"30

भक्तिकालीन सभी स्रांतों के अध्ययन से यह कहा जा सकता है कि मीरा मूलतः भक्त थीं और इसी कारण विद्रोह चेतना से युक्त भी। उनकी भक्ति कहीं भी विद्रोह को दबाती न थी बल्कि मुखर करती थी। मीरा को लेकर सगुण–निर्गुण का विवाद और विभिन्न संप्रदायों द्वारा उन पर की गई टीका–टिप्पणियों से मीरा की एक अलग विशिष्टता का बोध होता है। पुष्टिमार्गी मीरा के सच्चा वैष्णव भक्त होने से इंकार करते हैं परंतु वर्तमान में तो उनके 'भक्त' होने पर ही प्रश्नचिह्न हैं। मध्यकाल को समझने के लिए दृष्टि में संकीर्णता नहीं बल्कि समन्वयता होनी चाहिए। कविता की गहरी समझ होनी चाहिए। 'कबीर को धर्म गुरु या धर्म संस्थापक बताने का प्रतिवाद करते हुए प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल ने भक्ति काव्य की व्याख्या करने वालों को 'आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता के दर्प से मुक्त होने और कविता की ऊंगली पकड़कर चलने' की जरूरी सलाह दी है। मीरा को 'खोज' निकालने वालों या मीरा को प्रतिष्ठित करने का दावा करने वालों के लिए भी यह सलाह मुफीद है।

इस सलाह को ध्यान में रखने पर यह रोचक बात खुलती है कि मीरा को मनमाने विमर्शों में खींचने की आधुनिक, उत्तर–आधुनिक पद्धति की भी एक परंपरा है और वह परंपरा मीरा की संवेदना से नहीं, बल्कि उस संवेदना को संकीर्ण सांप्रदायिकता में बांध लेने पर उतारु पुष्टिमार्ग से जुड़ती है। उसी पुष्टिमार्ग से, जिसके एक 'प्रवक्ता' ने महाप्रभु आचार्य जी की अवहेलना करने वाली 'दारी रॉंड' मीरा का मुँह तक न देखने की प्रतिज्ञा की थी। स्वतंत्रचेता कवि को मार–मार कर अपने माफिक बना लेने की 'सिद्धता' का एक रूप वह भी था, उसी सिद्धता का एक रूप यह है कि मीरा के 'विद्रोहिणी स्त्री' होने और भक्त न होने की बात को परस्पर नत्थी कर दिया जाए, और भी कमाल की बात यह कि मीरा के विद्रोह की चर्चा ऐसे कृपाभाव से की जाए गोया कि आधुनिक, उत्तर आधुनिक विमर्शों के प्रसाद से वंचित मीरा के समकालीन और निकट समकालीन मीरा के विद्रोह को समझते ही न हों। उसी मीरा के विद्रोह को, जिसने न राजसत्ता के सामने समर्पण

किया, न धर्मसत्ता के और जिसकी रचना को सहेजने का कार्य उसके हज़ारों अनाम प्रशंसकों ने, स्त्रियों ने, पुरुषों ने किया।

सन्दर्भ

1. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (द्वितीय भाग), जोधपुर, 1999, पृ.214
2. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.26
3. वही, पृ.29
4. नरसिंह मेहता कृत काव्य संग्रह, संपा. – ईच्छाराम सूर्यराम देसाई, पृ.472
5. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.27
6. वही, पृ.79
7. वही, पृ.31
8. वही, पृ.70
9. ग्रंथ साहिब, सद्गुरु श्री गरीबदास जी की बानी (साखी), पृ.370
10. वही, पृ.68
11. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, पृ.73
12. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी 'मीराँबाई की पदावली', इलाहाबाद, 2002, पृ.36
13. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.79
14. वही, पृ.74
15. वही, पृ.52
16. श्री भक्तमाल गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन कल्याण, 1989, पृ.3
17. वही, पृ.119
18. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.21
19. आलोचना (त्रैमासिक), जुलाई–सितंबर, 2007, पृ.92
20. श्री भक्तमाल गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन कल्याण, 1989, पृ.120

21. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.41

22. राघवदास, भक्तमाल (अगरचंद नाहरा), ग्रंथाक–78, प्रा.वि.प्र., जोधपुर, पृ.99

23. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.48

24. वही, पृ.48

25. चौरासी वैष्णवन को वार्ता, वेंकटेश्वर प्रेस, पृ.163

26. दो सौ बावन वैष्णव की वार्त्ता, पूजा प्रकाशन, पृ.61

27. डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध, सं. डॉ गोविंद चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ.75

28. सी.एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य (प्रथम भाग), जोधपुर, 1999, पृ.62

29. वही, पृ.65

30. मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, संपादक– संजय मल्होत्रा, शांतिप्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ.53

अध्याय दो

किंवदंतियां और इतिहास : *राजकीय उपेक्षिता की लोक महिमा*

हिंदी साहित्य का इतिहास

उन्नीसवीं सदी से पहले ऐसे ग्रंथों का प्रणयन हो चुका था, जिनमें हिंदी के विभिन्न कवियों का परिचय दिया गया है, जैसे – वार्त्ता, साहित्य, भक्तमाल परंपरा के ग्रंथ, गुरुग्रंथ साहिब, भक्त नामावली आदि। कालक्रम, सन्–संवत् आदि की अशुद्धि होने के कारण इन्हें इतिहास की संज्ञा दी जाती है परंतु इतिहास न मानने से इनका महत्व कम नहीं होता बल्कि प्रारंभिक स्रोतों के रूप में ये इतिहास ग्रंथों से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का सर्वप्रथम प्रयास फ्रेंच विद्वान गार्सा द तासी कृत 'इस्तवार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' माना जाता है। इसमें हिंदी व उर्दू के अनेक कवियों का विवरण वर्ण क्रमानुसार दिया गया है। नाभादास कृत भक्तमाल सहित हिंदी के लगभग ग्यारह ग्रंथों को आधार बना कर इस ग्रंथ की रचना हुई थी अतः भक्तमाल में दिये छप्पय और प्रियादास की टीका वाले कवित्तों का फ्रेंच अनुवाद भी मिलता है। मीरा संबंधी उल्लेख भी इन्हीं ग्रंथों से प्रभावित हैं परंतु कोई नई सूचना नहीं मिलती है।

इसी प्रकार सर जार्ज ग्रियर्सन कृत 'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' और शिवसिंह सेंगर कृत 'शिवसिंह सरोज' में भी मीरा संबंधी फुटकर उल्लेख हैं परंतु कोई नवीन तथ्य नहीं प्रकट होता।

'मिश्र बंधु विनोद' के आधार ग्रंथों में शिवसिंह सरोज, ग्रियर्सन कृत इतिहास, किंवदंतियाँ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्टें और मुंशी देवी प्रसाद के मीरा चरित्र व जोधपुर के उल्लेख हैं। वास्तव में, मिश्रबंधु विनोद में मीरा संबंधी उल्लेख न के बराबर हैं। इनका कवि विभाजन प्रबंध रचियता एवं मुक्तक रचियता के रूप में है। ऐसे में मीरा के स्थान की कल्पना स्वयं कर लेनी चाहिए।

इन इतिहास ग्रंथों के आधार ग्रंथ विशेषतः मीरा के संदर्भ में नाभादास, कर्नल जेम्स टॉड, विल्सन आदि के रचित ग्रंथ हैं। अतः नवीन तथ्य देने में इनका अपना कोई स्वतंत्र महत्व नहीं है।

हिंदी साहित्य के इतिहास की परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास (1923 ई.) को प्राप्त है, जो वस्तुतः काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया था। इसे ही आगे परिवर्द्धित एवं विस्तृत करके स्वतंत्र ग्रंथ का रूप दिया गया। आचार्य शुक्ल के इतिहास लेखन की दृष्टि अधिक व्यापक, स्पष्ट व व्यवस्थित है। मीरा संबंधी उनका उल्लेख है –

"ये मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव दूदाजी की पौत्री और जोधपुर को बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इनका जन्म 1573 में चोकड़ी नामक गांव में हुआ था और विवाह उदयपुर के महाराणा कुमार भोजराज जी के साथ हुआ था। यह आरंभ से ही कृष्ण भक्ति में लीन रहा करती थी। विवाह के थोड़े दिनों में इनका पति का परलोकवास हो गया। ये प्रायः मंदिर में जाकर उपस्थित भक्तों और संतों के बीच कृष्ण भगवानं की मूर्ति के सामने आनंदमय होकर नाचतीं और गातीं थीं। कहते हैं कि इनके इस राजकुल विरुद्ध आचरण से इनके स्वजन लोकनिंदा के भय से रुष्ट रहा करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि इन्हें कई बार विष भी देने का प्रयत्न किया गया, पर भगवान कृपा से विष का कोई प्रभाव इन पर नहीं हुआ। घरवालों के व्यवहार से खिन्न होकर ये द्वारका और वृंदावन के मंदिरों में घूम–घूमकर भजन सुनाया करती थीं। जहाँ जाती वहाँ इनका देवियों का सा सम्मान होता। ऐसा प्रसिद्ध है कि घरवालों से तंग आकर इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को पद लिखकर भेजा था।....

मीराबाई की उपासना 'माधुर्य भाव' की थी अर्थात् वे अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की भावना पति या प्रियतम के रूप में करती थीं। पहले यह कहा जा चुका है कि इस भाव की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है। इसी ढंग की उपासना का प्रचार सूफी भी कर रहे थे अतः उनका संस्कार भी इन पर अवश्य कुछ पड़ा। जब लोग इन्हें खुले मैदान मंदिरों में पुरुषों के सामने जाने से मना किया करते थे तब वे कहती थीं कि कृष्ण के अतिरिक्त और पुरुष है कौन जिसके सामने लज्जा करुं? मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है, और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यासजी मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है। इनका पद कुछ तो

राजस्थानी मिश्रित भाषा में है और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। पर सबमें प्रेम की ताल्लीनता समान रूप में पाई जाती है। इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं – नरसी जी का मायरा, गीतगोविंद टीका, राग गांविंद, राग सोरठ के पद।" 1

शुक्ल जी ने मीराबाई का जन्म काल संवत् 1573 माना है जबकि इनका जन्म 1555 संवत् अर्थात् 1498 ई. माना जाता है। संवत् 1573 (1516) इनका विवाह काल है। इसी प्रकार मीरा का विवाह चित्तौड़ कुंवर भेजराज से हुआ था, ना कि उदयपुर के महाराणा के साथ। इनके पति कभी महाराणा ही नहीं बने और उदयपुर नगर की स्थापना बहुत समय बाद इनके देवर महाराणा उदयसिंह ने की थी।

इसी प्रकार शुक्ल जी ने मीरा के कहे जाने वाले चार ग्रंथों में एक 'गीत गांविंद टीका' का नाम लिया है। पहले मीरा को राणा कुंभा की पत्नी समझा जाता था। राणा कुंभा ने 'रसिक प्रिया' नाम से गीत गोविंद की टीका संस्कृत में की है। संभवतः वही टीका मीरा की मान ली गई है। मीरा की लिखी हुई गीतगांविंद की कोई टीका नहीं मिलती है।

शुक्ल जी जब मीरा के संबंध में देवियों का सा सम्मान पाने की बात कहते हैं तब मीरा की लोक प्रसिद्धि का अनायास ही बोध होता है। इसके साथ ही साथ मीरा के महत्व को बताने के लिए नाभादास, ध्रुवदास, ब्यास जी, मलूकदास का भी उल्लेख किया है।

शुक्ल जी द्वारा स्थापित कई स्थापनाओं से विपरीत नई व मौलिक स्थापनाएँ करने में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम लिया जा सकता है। इनका उद्देश्य शुक्ल जी का विरोध करना नहीं बल्कि सिक्के का दूसरा पहलू दिखाना मुख्य लक्ष्य है। कहा जा सकता है कि दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं। इनके 'ग्रंथ 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' में मीराबाई के संदर्भ में जानकारी मिलती है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की दृष्टि संतुलित है। मीराबाई के संदर्भ में इन्होंने कहा है कि –

मीराबाई हिंदी की प्रसिद्ध भक्त कवि हैं। कर्नल श्रॉड के अनुसार ये महाराजा कुंभा की स्त्री थीं, किंतु मुशी देवीप्रसाद और महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा जैसे इतिहास लेखकों को यह बात इतिहास–विरुद्ध जान पड़ी। परंपरा के

अनुसर मीराबाई राव जोधाजी के वंश में उत्पन्न हुई थीं। इनके पदों में प्रायः ही उनके लिए मेड़ताणी शब्द का प्रयोग है, जिससे सूचित होता है कि वे मेड़ता की रहने वाली थीं। मेड़ता को सन् 1461 ई. में राव दूदाजी ने बसाया था, इसलिए मेड़ताणी शब्द का प्रयोग इस काल के बाद ही हो सकता है। ऐसी हालत में मीरबाई का संबंध महाराणा कुम्भा से, जिनकी मृत्यु सन् 1468 ई. में हो चुकी थी, नहीं जोड़ा जा सकता। इसलिए इन इतिहास–लेखकों ने उदयपुर के किसी और राणा के साथ इनका संबंध जोड़ने का प्रयास किया है। नाभादासजी के भक्तमाल और उस पर प्रियादास की टीका में इस बात का बहुत उल्लेख है है कि किस प्रकार राणा ने मीराबाई को साधुसंग से विरत करना चाहा था और ज़हर देकर मार डालना चाहा था। सबसे पहले विलियम क्रुक ने संकेत किया था कि मीराबाई वस्तुतः राणा कुम्भा की स्त्री नहीं थीं बल्कि राणा सांगा के पुत्र भोजराज को ब्याही गयीं थीं। परंपरा से यह प्रचलित है कि मीराबाई विधवा हो गई थीं और इनके देवर राणा ने अपनी कुल मर्यादा की रक्षा के लिए नाना भांति से इन्हें साधुसंग से विरत किया, परंतु इधर पद्मावती देवी 'शबनम' ने मीरा के अनेक पदों से यह सिद्ध किया है कि वे वस्तुतः सुहागिन थीं और उनके ऊपर जो अत्याचार हो रहे थे, वे संभवत, उनके पति की ओर से ही हो रहे थे। अपर्याप्त सामग्री के कारण मीराबाई के ज़न्म आदि के बारे में कुछ भी कहना कठिन है। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि मीराबाई सन् ईस्वी की सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अवश्य ही जीवित थीं। किंवदंतियाँ उनका जीवगोस्वामी, रैदास, तुलसीदास और कृष्णदास अधिकारी आदि से साक्षात्कार या पत्रव्यवहार होने का समर्थन करती हैं। उनके पदों में रैदास को गुरु के रूप में स्मरण किया गया है। यह कहना बहुत कठिन है कि ये पद कहाँ तक प्रामाणिक हैं। उनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने गोस्वामीजी से दीक्षा ली थी। इस प्रकार उनका संबंध एक तरफ को सगुणमार्गी भक्तों से सिद्ध होता है और दूसरी तरफ निर्गुणमार्गी भक्तों से भी उनका संबंध जोड़ा जाता है। फिर उनके भजनों में किसी ऐसे गुरु की भी चर्चा आती है जो नाथपंथी साधु जान पड़ते हैं। इन सब बातों का एक ही निष्कर्ष निकल सकता है कि मीराबाई अत्यंत उदार मनोभावापन्न भक्त थीं। उन्हें किसी पंथ–विशेष पर आग्रह नहीं था। जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है, वहीं उन्होंने उसे सिरमाथे चढ़ाया है। कहते हैं कि

उन्होंने तुलसीदास को भी एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने हरिभक्तों की सत्संगति से वंचित रह जाने के क्लेश का ब्यौरा दिया था और पूछा था कि ऐसे अवस्था में क्या कर्तव्य हो सकता है। तुलसीदास ने उत्तर में विनयपत्रिका का यह पद लिखकर भेजा था :

"जाके प्रिय न राम वैदेही,

ते नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। इत्यादि

परंतु ऐतिहासिक पंडितों का अनुमान है कि मीराबाई की मृत्यु 1546 ई. में हो चुकी थी। इसलिए तुलसीदास को पत्र लिखने की बात किंवदंती मात्र है।

मीराबाई का कवित्व :

मीराबाई के पदों में अपूर्व भाव–विह्वलता और आत्म–समर्पण का भाव है। इनके माधुर्य ने हिंदी–भाषा क्षेत्र के बाहर के भी सहृदयों को आकृष्ट और प्रभावित किया है। माधुर्यभाव के अन्यान्य भक्त कवियों की भांति मीरा का प्रेमनिवेदन और विरह–व्याकुलता अभिमानाश्रित और अध्यंतरित नहीं है, बल्कि सहज और साक्षात् संबंधित हैं इसीलिए इन पदों में जिस श्रेणी की अनुभूति प्राप्त होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वह सहृदय को स्पंदित और चालित करती है और अपने रंग में रँग डालती है।

उनके कुछ पदों में निर्गुणभाव की भक्ति भी मिलती है। परंतु गिरिधर नागर को उद्देश्य करके लिखे गए भजनों में मीराबाई जिस प्रकार सहज और स्व–स्थित दीखती हैं, उस प्रकार इन भजनों में नहीं दिखतीं। वस्तुतः अध्यंतरित, अनभिमानसिद्ध, सहज–आत्म–समर्पण का वेग जितना सगुणमार्ग के भजनों में है उतना निर्गुणमार्गी के भजनों में नहीं है। भगवद्विरह की पीड़ा को कम कवियों ने इतना मादक और प्रभावोत्पादक बनाकर प्रकट किया होगा। 2

तत्कालीन चलने वाली सभी बहसों व विमर्शों से द्विवेदी जी परिचित थे अतः मीरा को कुंभा की पत्नी कहने की भूल इन्होंने नहीं की। किंवदंतियों का भी उल्लेख किया गया है जिनमें जीवगोस्वामी, रैदास, तुलसीदास व कृष्णदास से भेंट आदि का जिक्र है।

उल्लेखनीय बात यह है कि द्विवेदी जी मीरा को किसी सांचे में ढाल देने के पक्ष में नहीं थे। मीरा की भक्ति की मूल भावना का संप्रदाय निरपेक्ष संवेदना को द्विवेदी जी ने भलीभाँति समझा है। वे कहते हैं कि "उन्हें किसी पंथ विशेष का आग्रह न था। जहाँ कहीं भी उन्हें भक्ति या चारित्र्य मिला है, वहीं उन्होंने उसे सिरमाथे चढ़ाया है।" 3

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की धारणा से मिलती–जुलती धारणा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के इतिहास ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में मिलती है। इनका कहना है कि –

"वास्तव में अभी तक मीरा का संबंध किसी संत या संप्रदाय विशेष से स्थापित नहीं किया जा सकता है। अभी तो केवल इतना कहा जा सकता है कि उस युग की विचारधारा और भक्ति उपासना पद्धति का ही उन पर प्रभाव पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान में रहते हुए संतों और रामानंदी साधुओं का, वृन्दावन आने पर भागवत धर्म के अंतर्गत पुष्टिमार्ग, निम्बार्क संप्रदाय, टट्टी संप्रदाय आदि के वातावरण का और अंत में स्वयं अपने कुल धर्म का प्रभाव उन पर पड़ा और वे श्याम के रँग में रँग गईं।" 4

'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में रामस्वरूप चतुर्वेदी चूंकि संवेदना को मुख्य आधार बिंदु बनाते हैं अतः मीरा की संवेदना की तुलना सूरदास की गोपियों की संवेदना से करते हैं। वे कहते हैं कि –"मिलता–जुलता नारी चरित्र होने के कारण गोपियों की विरह भावना का अध्यारोपण मीरां पर आसानी से हो जाता है। उनका काव्य सूर द्वारा विस्तार में चित्रित गोपियों की विरहोन्मुखता का ड़िटेल' या ब्यौरा है। जीवनवृत में ब्रज की गोपियों से, और रचनाधर्मिता में सूरदास से एकबारगी साम्य मीरां के पदों में अतिरिक्त तीव्रता भरता है।" 5

भाव संवेदना की तुलना के पश्चात् भाषायी संवेदना के स्तर पर वे कबीर से तुलना करते हैं। जिस प्रकार कबीर की भाषा पर कई बोलियों का प्रभाव था, ठीक उसी प्रकार का प्रभाव मीरा के पदों में भी है। इसी के साथ–साथ इनका कहना है कि मीरा में सर्जनात्मक क्षमता कम है। वास्तव में, मीराबाई के पदों में सूरदास या

तुलसीदास की भाषा जैसा कुशल प्रयोग तो नहीं दिखता किंतु भाव संप्रेषण की दृष्टि से इन पदों को कम नहीं आंका जा सकता है। लोकगीत की परंपरा मानों इनमें सार्थक होती है। मीरा भी लोकनिधि है अतः इनके पदों पर लोकगीतों का प्रभाव स्पष्ट ही दिखता है। इसी कारण मीराबाई के पद लोक में आज भी सुरक्षित हैं। 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में बच्चन सिंह संप्रदाय निरपेक्ष कवियों के प्रसंग में मीराबाई व रसखान का उल्लेख करते हैं। इनका कहना है कि "वास्तविकता तो यह है कि मीरा को किसी दूसरे की भावभूमि में, चाहे वह गोपीभाव की भूमि हो या राधा–भाव की, प्रवेश करने की आवश्यकता ही नहीं है। वे स्वयं भाव–स्वरूप हैं।" 6

हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' में मीराबाई संबंधित उल्लेख निम्न प्रकार से हैं–

मीराबाई (1498–1573) : मीराबाई का जन्म मेड़ता के निकट 'कुड़की' गांव में राठौड़ वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था। राव दूदा इस शाखा के प्रवर्तक थे। मीरा दूदा के पुत्र रावरत्न सिंह की पुत्री थीं। मीरा दो वर्ष की भी नहीं हो पायी थीं कि उनकी माता का देहाँत हो गया। राव दूदा उन्हें मेड़ता ले आये। वे स्वयं वैष्णव थे। उनके यहाँ साधुओं का सत्संग हुआ करता था। मीरा पर इस परिवेश का प्रभाव पड़ा और वे बाल्यावस्था में कृष्ण भक्ति की ओर उन्मुख हो गईं।

उनका विवाह राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ। विवाह के सात वर्ष बाद भोजराज की मृत्यु हो गई। बाल्यकाल में कृष्णप्रेम की बोई हुई बेलि नये वातावरण में बड़ी हो गयी। वे साधुओं के सत्संग और पूजा–पाठ में अपना समय व्यतीत करने लगीं। चित्तौड़ का सिसौदिया वंश राजपूतों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था। राणा सांगा की पुत्रवधु का यह स्वच्छंद आचरण राजपरिवार को कैसे सह्य हो सकता था। राणा सांगा के उत्तराधिकारी विक्रमसिंह ने उन्हें अनेक यातनाएँ दीं। यातना–कर्म में राणा का मंत्री विजयवर्गी वाणियाँ भी था। सामंत और महाजन दोनों ने मिलकर संकट उत्पन्न किया। वे खुशी–खुशी विष का प्याला पीं गईं पिटारी में भेजे हुए सांप भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके। 'जाको राखे साइयाँ मारि न सकै कोय।' मीरा का बाल भी बांका नहीं हुआ।

वे वृन्दावन चली गयीं। वहाँ चैतन्य मत के शास्त्रप्रणेता जीव गोस्वामी से भेंट हुई। गोस्वामी ने इन्हें पूरा सम्मान दिया। उनके लगा कि उनके गिरिधर नागर तो द्वारिका जा बसे हैं। वे वृन्दावन से द्वारिका चली आयीं। रणछोड़जी के मंदिर में भजन–कीर्तन करते हुए उन्होंने अपनी इहलौकिक लीला समाप्त की।

मीरा की रचनाओं की कुल संख्या ग्यारह बतायी जाती है – गीतगोविंद की टीका, नरसीजी का मायरा, राग सोरठ का पद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानुं रुसणं, मीरा की गरवी, रुक्मिणी मंगल, नरसी मेहता की हुंडी, चरीत और प्रस्फुट पद। इनमें से स्फुट पदों को छोड़कर शेष अप्रामाणिक हैं। उनके स्फुट पर 'मीराबाई' की पदावली के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

मीराबाई एक ओर सामंती आभिजात्य को एक झटके से तोड़ डालती हैं तो दूसरी ओर उनकी रचनाओं में आभिजात्य का संयम दिखाई पड़ता है। प्रिय के प्रति उनका प्रेम सामान्य मानवीय मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। कृष्णभक्त कवियों की तरह न आलिंगन, परिम्भण मुद्राएँ हैं और न अतिरंजनापूर्ण संयोग–शृंगार। जो कुछ है वह मर्यादित है, उनका संयोग–वियोग बहुत कुछ निजी और परिवारिक सा है।

उनमें एक और निर्गुण पंथ का योग, अनहद नाद, शून्य महला, सूरत, त्रिकुटी आदि हैं तो दूसरी ओर सूरदास के विनय के पदों की तरह पद भीहैं। एक ओर दांपत्य राग है तो दूसरी ओर असह्य विरहाकुलता। उनका स्वच्छंद व्यक्तित्व किसी रूढ़िग्रस्त धार्मिक घेरे में नहीं बंधता।

मीरा के प्रत्येक पद में गिरिधर नागर का स्मरण किया गया है। प्रश्न होता है कि कृष्ण को अन्य कवियों ने कन्हैया, वंशीधर, नंद–नंदन, श्यामकुमार आदि नामों से याद किया है। केवल मीरा ने ही गिरिधर नागर को प्रियतम के रूपमें याद किया है?

राणा सांगा के परिवार से, जो राजपूत जाति का मुकुट मणि था, अलग होकर साधु संतों के संग–साथ रहना गैरमामूली बात थी। अत्यंत आत्मविश्वास के साथ वे कहती हैं –'सिसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो कांई कर लेसी।' उनको इस बात का

पूरा एहसास है कि 'राठौडांरी धीयड़ीजी सींसोद्दार साथ'—पर वे करें तो क्या करें? राणाजी म्हारी प्रीत पुरवली मैं काई करु। अतः गिरिधर के अतिरिक्त और कौन रक्षा कर सकता है। इस विश्वास—रूपी रक्षा कवच के कारण राणा उसे मार नहीं सके। उनकी स्पष्ट घोषणा थी कि 'लोक लाज कुल की मरजाद यामें एक ना रखूँगी।' आगे चलकर उन्होंने भी स्पष्ट कर दिया है – 'वरजी मैं काहू की न रहूँ।' इसी को कहते हैं वास्तविक ज़िंदगी को जीना। मीरा ने यह निर्णय स्वयं ले लिया था और और उसी को जिया भी।

उनकी प्रेम—साधना स्वकीया की प्रेम—साधना थी, 'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।' वह प्रभु को 'पतिवरता' की सेज पर पधारने का आमंत्रण देती हैं। उसके स्वागत में कुलवधु की तरह श्रृंगार करती हैं। उन्होंने गांविंद से लुक—छिपकर प्रेम नहीं किया था बल्कि उन्हें ढोल बजाकर, प्रेम देकर मोल लिया था। उनके प्रेम में उच्छृंखलता नहीं है। आभिजात्य को वे छोड़ चुकी थीं, पर अभिजात के तत्कालीन गुणों को उन्होंने नहीं छोड़ा था। अपने को बराबर वे दासी क़हती हैं और गिरिधर गोपाल को मीरा के प्रभु। जीवन में इसका तिरस्कार कर दिया था। पर स्मरण रख़ना चाहिए कि वे भक्त भी थीं। अतः भगवान को प्रभु कहना स्वाभाविक था। वे प्रार्थना करती हैं –

म्हाँने चाकर राखोजी!

चाकर रहसूँ बास लगासूँ नित उठ दरसन पासूँ।
बृंदाबन की कुंज गलिन में गोबिंद लीला गाँसू।
चाकरी में दरसन पाउँ सुमिरन पाउँ खरजी।
भाव भगति 'जागीरी तीनों बातां सरसी।

कभी व्याकुल होकर रमते जोगी को पुकारती

जोगी, मत जा, मत जा, पाई परूँ चेरी तेरी हौं।
प्रेम—भगति को पैंड़ो ही न्यारो हमकूँ गैल बता जा।

दर्द को तो पूछना ही नहीं है –

हेरी म्हा तो दरद दिवाणी म्हाराँ दरद न जाण्याँ कोय।
घायल री गत घायल जाण्याँ हिवड़ों अगण सँजोय।।

प्रेम बावली मीरा स्वच्छंद भाव से नाच उठती है –

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
मैं तो अपने नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी रे।।

मीरा की लोकप्रियता का पहला कारण है ऊँचे राजकुल का त्याग करके साधुओं, संतों और भक्तों के बीच सामान्य जन के स्तर पर भक्तिभाव की अभिव्यक्ति, दूसरा कारण है –संप्रदाय निरपेक्षता और तीसरा कारण है ऐसी भाषा का प्रयोग जो लोक–जीवन में रची–बसी थी। क्या कारण है कि हमारे जीवन में कबीर, सूर और मीरा के पद आज भी जीवित हैं, जबकि सांप्रदायिक सिद्धांतों पर गढ़े जानेवाले पद लुप्त होकर किताबों में बंद हो गये हैं? गुजरात से लेकर समस्त हिंदी भाषा–भाषी प्रेदेशों में मीरा जैसी लोकप्रियता शायद ही किसी को मिली हो। कहना न होगा कि वे समाज की जड़ता को तोड़कर स्वच्छंदता की राह दिखा रही थीं। मीरा को समझने के लिए उनके जीवन–संघर्षों और तत्कालीन जड़वादी सांप्रदायिक भक्तों के सामंती प्रतिबंधों के परिप्रेक्ष्य को दृष्टि से ओझल नहीं करना होगा।" 7.

यहाँ 'आभिजात्य' शब्द का तात्पर्य है, कुछ असपष्ट है। संभवतः भक्त की स्वाभाविक विनम्रता को वे आभिजात्य का संयम समझ लेते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं कि "प्रिय के प्रति उनका प्रेम सामान्य मानवीय मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। कृष्ण भक्त कवियों की तरह न आलिंगन, परिरम्भण की मुद्राएँ हैं और न अतिरंजनापूर्ण संयोग शृंगार। जो कुछ है वह मर्यादित है, उनका संयोग–वियोग बहुत कुछ निजी और पारिवारिक–सा है।" 8

इसके साथ ही दूसरी ओर वे कहते हैं कि– "उनकी प्रेम साधना स्वकीया की प्रेमसाधना थी–'जा के सिर मोर मुकुट मेरी पति सोई। वह प्रभू को 'पतिवरता' की

सेज पर पधारने का आमंत्रण देती हैं। उसके स्वागत में कुलवधू की तरह शृंगार करती हैं। उनके गोविंद से लुक–छिपकर प्रेम नहीं किया था बल्कि उन्हें ढोल बजाकर, प्रेम देकर मोल लिया था।" 9

उपरोक्त दोनों ही कथन निश्चित रूप से विरोधाभास तो रखते ही हैं। मीरा का प्रेम लोक और निज के लिए अलग–अलग नहीं थे कि वे कहीं–कहीं मर्यादित हो जायें और कहीं एकदम मुखर हो जायें। मीरा का प्रेम उनकी भक्ति का आधार था, समर्पण था अतः मीरा ने उसकी स्पष्ट स्वीकारोक्तियाँ की हैं और अपनी भावनाओं का बिना किसी लाग लपेट के सहज अभिव्यक्ति दी है।

स्त्री विमर्श के मुद्दे को वे अप्रत्यक्ष ढंग से उठाते हैं। वे कहते हैं कि "अपने को बराबर वे दासी कहती हैं और गिरधर गोपाल को मीरा के प्रभु। इस समय् पत्नी को दासी और पति को प्रभु नहीं कहा जा सकता है। मीरा ने तो वास्तविक जीवन में इसका तिरस्कार कर दिया था। पर स्मरण रखना चाहिए कि वे भक्त भी थीं।"10

यहाँ भक्त 'भी' थी से प्रत्यक्षतः अर्थ यह निकलता है कि मूल रूप में भक्त नहीं थीं, परंतु क्या थीं इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। बच्चन सिंह जी का मानना है कि लोग भाषा, संप्रदाय निरपेक्षता व लोक समागम के कारण मीराबाई लोकप्रिय हैं हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों के क्रम में ही बात करें तो विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (जो कक्षा 12 के लिए वैकल्पिक हिंदी की पाठ्यपुस्तक है) में मीरा विषयक उल्लेख महत्वपूर्ण हैं।

भक्तिकालीन 'भक्त' की समझ को मीरा विषयक चिंतन में इन्होंने बखूबी प्रकट किया है। जब वे कहते हैं कि 'मीरा को भक्त होने के लिए लोकलाज छोड़नी पड़ी और यही बात राणा को खलती थी।11 तब मीरा के भक्त रूप व उसी समांतर विद्रोही चेतना दोनों उभर कर आते हैं।

भक्ति में कोई विरचारधारा हो यह हमेशा जरूरी नहीं है। मीरा की भक्ति और प्रेम में सगुण व निर्गुण दोनों ही भाव मिलते हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी भी मानते हैं कि 'मीरा पर सगुण व निर्गुण दोनों ही' साधनाओं का प्रभाव है।" 12

बहुत कुछ इसी तर्ज पर आधारित पुस्तक हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (माध्यममिक शिक्षा, राजस्थान, अजमेर) में त्रिपाठी जी के ही मतों का उल्लेख है। इन दोनों ही पुस्तकों में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उनमें मीरा की भक्ति की शुरूआत पति की मृत्यु के बाद मानी गई है।

भक्तिकालीन संतों की अखिल भारतीयता पर कोई संदेह नहीं है। वे स्वयं से जुड़े स्थानों पर तो प्रसिद्ध हें ही साथ ही साथ उनकी वाणी सुदूर क्षेत्रों में भी फैली। लोक कण्ठ में व्याप्त उनके पद प्रत्येक क्षेत्र में कुछ शब्दों के उलटफेर के साथ मिल ही जाते हैं।

गुजराती भाषा में मीरा का पद जो गुजरात में बहुत प्रचलित है, वह है –

"झेरको प्यालो राणाजी भेज्यो धरियो मीरा हाथ।
करी चरणामृत पी गई रे, श्री ठाकुर को परसाद।।
राणाजीए रीस करी भेज्यो झेरी नाग असार।
पकड़ गले बीच डालियो, कॉंई हो गयो चंदनहार।।" 13

ठीक यही पद आचार्य परशुराम चतुर्वेदी कृत 'मीराबाई की पदावली' में इस प्रकार से मिलता है –

"ये तो रँग धत्ताँ लग्यो ए माय।।
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई धूम घुमाय।
यो तो अमल म्हाँरो कबहूँ न उतरे, को करि उपाय।
सथँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यौ मेड़तणी गल डार।
हँस–हँस मीराँ कंठ लगायो, यो तो म्हाँरे नौसर हार।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो, द्यो मड़तणी णे पाय।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ जाय।।" 14

मीराबाई राजस्थान में जन्मी और हिंदी की महत्वपूर्ण भक्त कवियत्री मानी जाती हैं। इसके साथ ही साथ गुजरात उनकी कर्मभूमि रही और गुजराती साहित्य

में भी उन्हें महत्वपूर्ण स्थान मिला। कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी ने अपनी पुस्तक 'माईल स्टोन इन गुजराती लिटरेचर' में जहाँ जनुश्रुतियों का सहारा लिया है वहीं श्री जयंतकृष्ण हरिकृष्ण दवे कृत पुस्तक 'गुजराती साहित्य का इतिहास' में मीरा संबंधी उल्लेख महत्वपूर्ण है। किंवदंतियों का उल्लेख यहाँ भी हुआ है किंतु संतुलित दृष्टि मिलती है। इस पुस्तक में उल्लेखनीय तथ्य यह ज्ञात होता है कि ससुराल ही नहीं मायके मेड़ता में भी उन पर निगरानी रखी जाने लगी अर्थात् उन्हें कहीं चैन से रहने न दिया गया परंतु अंततः उन्हें द्वारिका में रणछोड़ जी की मूर्ति के समक्ष मुक्ति मिली। गुजराती भाषा व पश्चिमी भाषा की प्रमुख भक्त कवियत्री व 'प्रेम दीवानी' कहा है। उनके गुजराती में लिखे 250 पद तथा 'नरासिंह नायरा' तथा 'सतभामानुं रूसणु' भी गुजराती के उल्लेखनीय ग्रंथ माने गए हैं परंतु ये ग्रंथ प्रामाणिकता की समस्या से गुज़र रहे हैं। गुजरात में मीरा के महत्व को पुष्ट करते हुए लेखक कहता है कि – "भक्ति प्रचार में मीरा का योग नरसिंह के समान अथवा उनसे कुछ अधिक माना जाता है। केवल गुजराती भाषा में ही नहीं, वरन् ब्रज और राजस्थानी भाषा की प्रथम कोटि की कवियत्रियों में मीरा का स्थान है।" 15

इसी प्रकार की धारणा सरला जगमोहन के लेख 'Twentieth Century Gujrati Literature' में मिलती है। इनका उदाहरण है कि मीरा गुजरात के आदि कवि नरसिंह मेहता के समान महत्वपूर्ण हैं और गुजरात की प्रथम महिला कवियत्री मानी जाती हैं।

ख्यात,

भारतीय संस्कृति के विकास क्रम में कालखण्ड के साथ–साथ इतिहास दृष्टि में निरंतर परिवर्तन हुए हैं। भारतीय संदर्भों में उपनिवेशवादी लेखन भी हुआ है और इसके प्रतिक्रियास्वरूप राष्ट्रवादी दृष्टि को केंद्र में रखकर भी इतिहास की पड़ताल हुई।

मीराबाई के संदर्भों में, राजस्थान के इतिहास को जानने में प्रारंभिक स्रोतों सा काम करने वाली विभिन्न ख्यातों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है।

ख्यात से तात्पर्य ख्याति से है। इन विभिन्न ख्यातों की रचना का उद्देश्य रियासत का वंशक्रम, सरकारी रिकार्ड, दान, विजय–गाथाएँ आदि का लेखा–जोखा रखना होता था। राजस्थान में ऐसी सैकड़ों ख्याते लिखी गई हैं परंतु कई ख्यातें तो केवल लेखा–जोखा भर देती हैं तो कई में सत्ता के अनुकूल लेखन मिलता है। लेखन व सूचनाओं की दृष्टि से मुहणोत नैणसी की ख्यात महत्वपूर्ण मानी जाती है। भारतीय इतिहास में मुगलकाल के अबुलफज़ल के समान संतुलित दृष्टि व विवरणों के कारण इन्हें राजस्थान का 'अबुलफजल' कहा जाता है।

जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह के दीवान मुहणोत नैणसी ने राजपुताना की लगभग सभी रियायतों का उल्लेख किया है परंतु जोधपुर राठौर घराने के बारे में विशद् जानकारी दी गई है। उल्लेखनीय है कि मेड़ता राजवंश, जोधपुर राजवंश का ही अंश है। इस कारण मीरा के पितामह राव दूदा तथा पिता रत्न सिंह के विषय में जानकारी मिलती है। वहीं दूसरी ओर अपनी ख्यात में जब वे सिसोदिया वंश (मेवाड़) का उल्लेख करते हैं तब राणा साँगा के पुत्र भोजराज की पत्नी के रूप में मीरा का नाम आया है।

"भोजराज सांगावत, इणनु कहे हो मीरॉबाई राठौड़ परणाई हुति।" 16

राजवंशों में नाम के बाद पिता का नाम तथा वंश का नाम अनिवार्य है। यथा–भोजराज सांगावत। इसी प्रकार से कई स्थान पर महाराणा सांगा रायमलोत् लिखा जाता है। राजा रायमल्ल इनके पिता का नाम था। इस प्रकार के पितृसत्तात्मक, वंश प्रभुत्व वातावरणों में जहाँ ख्यातें वीरों की प्रशस्ति गाती थीं, वहाँ मीरा की भक्ति इतनी महत्वपूर्ण न थी जितनी वह बात कि वे राजकुंवर भोजराज की राठौड़ पत्नी हैं।

इसी क्रम में जोधपुर महाराजा जसवंत सिंह (प्रथम) के समय में ही लिखी गई ख्यातों में उदयभाव चंपावत द्वारा संकलित की गई एक ख्यात जोधपुर के कविराज मुरारीदान के संग्रह में मिलती है। इस ख्यात में भी जोधपुर राजवंश के

विषय में उचित प्रकाश पड़ता हैं इसी प्रकार से मेवाड़ व मारवाड़ के बीच वैवाहिक संबंधों की जानकारी हेतु 'राठौड़ाँ री ख्यात' महत्वपूर्ण है।

इन ख्यातों से हमें मीरा के विषय में प्रत्यक्षतः कोई जानकारी नहीं मिलती है। संभवत् इसके पीछे सत्ता के निर्देश भी हों। ख्यात का मुख्य लक्षण वीर प्रशस्ति व राजकीय रिकॉर्ड रखना होता था। अतः इन्हें विशुद्ध राजनीतिक दृष्टि से लिखा जाता था। मुख्य कथा के क्रम में जिस प्रकार छोटी–छोटी अनेक कथाएँ चल रही हैं वैसे ही राजकीय रिकार्डों के इतर शेष जानकारी छिटपुट ही है।

उपनिवेशवादी दृष्टि

इतिहास की उपनिवेशवादी दृष्टि अंग्रेजों की भारत विजय को न्याय संगत ठहराने का ही परिणाम थी। अंग्रेजों ने प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं को अधिक विकसित, सुसंस्कृत व प्रशासकीय गुणों से युक्त माना है। उनके अनुसार भारतीय जनता निरंकुश शासन की आदी होती थी। इतिहास की व्याख्याएँ भिन्न ढंग से की गई थी। काल विभाजन हिंदू युग, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल की तर्ज पर किया गया। ब्रिटिश पूर्व भारत के शासकों को धर्म के आधार पर वर्गीकृत करने वाले जे. एस. मिल ने ब्रिटिश राज को ईसाई राज कहना ज़रूरी नहीं समझा।

'श्वेत आदमी का बोझ' लिए ब्रिटिश सरकार भारत के प्रशासन को उचित रूप से चलाने के लिए भारतीय इतिहास, सभ्यता व संस्कृति को समझने का प्रयास कर रही थी। इतिहास की पड़ताल हुई और तथ्यों की अपनी आवश्यकतानुसार व्याख्या की गई।

शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए भारतीय इतिहास को जानने व समझने के क्रम में कई प्रयास हुए। लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड कृत 'एनेल्स एँड ऐटिक्विटी ऑव राजस्थान' भी ऐसा ही प्रयास है। इसमें राजस्थान की बहुत ही अप्रकाशित सामग्री को प्रथम बार प्रकाशित करवाया गया। इस कारण यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया। इसे राजस्थान का इतिहास जानने के लिए प्रारंभिक स्रोतों का दर्जा मिलने लगा। कर्नल टॉड के मीरा विषयक उल्लेख हैं–कर्नल टॉड

द्वारा दी गई जानकारी जो काफी समय तक विज्ञान जस की तस उपयोग में लेते रहे हैं, अप्रामाणिक है। कर्नल टॉड मीरा को राणा कुंभा की पत्नी मानते हैं जो कई शोधों के बाद गलत साबित हो चुका है। कर्नल टॉड राजपूताना में अंग्रेजी रेजीडेंट की हैसियत से कार्यरत थे। रेजीडेण्ट अंग्रेजी शासन की तरफ से वह अधिकारी होता था जो सहायक संधि के नियमों के अनुसार राज दरबार में ही रहता था तथा राजा को परामर्श दिया करता था। अप्रत्यक्ष रूप से शासन में रेजीडेण्ट का हस्तक्षेप होता था। दरबारी राजनीति के साथ–साथ राजपूताना की संस्कृति पर भी जेम्स टॉड़ का ध्यान आकर्षित हुआ था। तथ्यात्मक सूत्रों व शोध के स्थान पर उन्होंने किंवदंतियों, चारण–भाटों की ख्यातों आदि के आधार पर निष्कार्ष दे दिऐ थे अत काल्पनिक तथ्यों का भी समावेश हो गया है।

जिस प्रकार वीर प्रशस्ति ग्रंथों में राजा का पराक्रम दिखाने के लिए कई सौ वर्ष पहले व बाद के पराक्रमी राजाओं से युद्ध के विवरण भी दे दिये जाते थे, ठीक उसी प्रकार से लोक में मीरा का महत्व बताने के लिए कुंभा से तुलना की जाती होगी जिसे कर्नल टॉड ने मीरा का कुंभा की पत्नी होना मान लिया है। राणा कुंभा ने समस्त मेवाड़ में 32 किलों का निर्माण करवाया था, कई युद्ध जीते थे परंतु इसके साथ–साथ ने कई ग्रंथों की रचना भी की थी। संगीत के क्षेत्र में उसे 'अभिनव भरताचार्य' की उपाधि प्राप्त थी अतः मीरा व राणा कुंभा में अनेक समानताओं की वज़ह से भ्रम स्वाभाविक है। कर्नल टॉड द्वारा मीराबाई को राणा कुंभा की पत्नी कहना अप्रत्यक्ष रूप से इन दोनों को ही महत्व देना है। संगीत, विद्वता लोकप्रियता में दोनों समान हैं किंतु भक्ति में मीरा बीस नहीं है। वास्तव में, भारतीय इतिहास व संस्कृति को समझने के लिए भाषाई पकड़ व मुहावरे का ज्ञान बहुत जरूरी है। यदि लोक में यह कहा जाए कि मीराबाई कुंभा की 'बहू' है तो इस वाक्य के दोनों ही अर्थ हो सकते हैं। मीराबाई, कुंभा की पत्नी भी हो सकती है और कुंभा के वंशज भोजराज की पत्नी भी। इस तरह की वाक्य संरचना में संदर्भ के हिसाब से निहितार्थ का बोध करना पड़ता है। भारतीय संस्कृति में 'धर्म–भाई', 'धर्म–बहन, आदि शब्दों का भी चलन है परंतु ये शब्द रक्त–संबंधों की ओर इशारा

नहीं करते हैं। भारतीय या किसी भी संस्कृति को समझने के लिए सभी भाषाई संरचना व मुहावरे की समझ जरूरी है। यही स्थिति मीराबाई को राव दूदा की पुत्री के संदर्भ में भी है। मीराबाई पर राव दूदा का बहुत अधिक प्रभाव था। माता की मृत्युपरांत मीराबाई का लालन–पालन राव दूदा जो कि मीराबाई के दादा थे, ने किया था। अतः यह प्रचलित होना कि मीराबाई राव दूदा की बेटी हैं, ठीक ही है परंतु इसे अभिधा में ले लेना उचित नहीं। वास्तव में, मीरा राव दूदा की पौत्री है जो एक लंबे समय तक उनके प्रभाव में रही।

प्रशासनिक अधिकारी कर्नल जेम्स टॉड के तथ्य कितने निराधार हैं, इस बात से पता चलता है कि वे एक जगह मीराबाई को राणा लाखा की पत्नी कह देते हैं और विक्रमादित्य को मीराबाई का पुत्र बताते हैं –

"परंतु जो देवालय मेरे लिए सबसे अधिक आकर्षण की वस्तु सिद्ध हुआ वह था मेरी भूमि मेवाड़ की रानी लाखा राना की स्त्री। सुप्रसिद्ध मीराबाई का बनवाया हुआ सौरसेन के गोपाल देवता का मंदिर, जिसमें वह नौ का प्रेमी अपने मूल स्वरूप में विराजमान था, और निसंदेह यह राजपूत रानी उसकी सबसे बड़ी भक्त थी। कहते हैं कि उसके कवित्वमय उद्‌गारों से किसी भी समकालीन भाट (कवि) की क़विता बराबरी नहीं कर सकती थी। यह भी कल्पना की जाती है कि यदि गीत गोविद या कन्हैया के विषय में लिखे गए गीतों की टीका की जाए तो ये भजन जयदेव की मूल कृति की टक्कर के सिद्ध होंगे। उसके और अन्य लोगों के बनाए भजन, जो उसके उत्कट भगवत्–प्रेम के विषय में अब तक प्रचलित हैं, इतने भावपूर्ण एवं वासनात्मक हैं कि संभवतः अपर गीत उसकी प्रसिद्धि के प्रतिस्पर्धी वंशानुगत गीत–पुत्रों के ईर्ष्यापूर्ण आविष्कार हों, जो किसी महान् कलंक का विषय बनने के लिए रचे गए हों। परंतु यह तथ्य प्रमाणित हैं कि उसने सब पद–प्रतिष्ठा छोड़कर उन सभी तीर्थ–स्थानों की यात्रा में जीवन बिताया, जहाँ मंदिरों में विष्णु के विग्रह विराजमान थे और अपने देवता की मूर्ति के सामने रहस्यमय 'रासमण्डल' की एक स्वर्गीय अप्सरा के रूप में नृत्य किया करती थी। इसलिए लोगों को बदनामी

करने का कुछ कारण मिल जाता था। उसके पति और राजा ने भी उसके प्रति कभी कोई ईर्ष्या अथवा संदेह व्यक्त नहीं किया यद्यपि एक बार ऐसे ही भक्त के भावावेश में मुरलीधर ने सिंहासन से उतरकर अपनी भक्ति का आलिंगन भी किया था—इन सब बातों से यह अनुमान किया जा सकता है कि मीरां के प्रति संदेह करने का कोई उचित कारण नहीं था। यही नहीं उनके पुत्र विक्रमाजीत ने भी, जिसने बादशाह्र हुमायूँ का सामना किया था, अपनी माता के पवित्र भक्तिभाव को ग्रहण किया और 'नित्य–प्रति' गौ–हत्या से अपावन हुए ब्रजमण्डल से देव–प्रतिमा को लाने के लिए अपना और अपने साथी एक सौ राजपूतों का सिर देने की प्रतिज्ञा की थी। इस प्रतिज्ञा को उसके वीर वंशज राणा राजसिंह ने धर्मांध औरंगजेब के समय में पूरी की थी।" [17]

इसी क्रम में हैं इतिहासकार, मुख्यतः पुरातत्ववेत्ता एलेक्जेंडर किन्लोक फार्बस, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के सिविल सर्वेंट भी थे। ये अपने ग्रंथ 'रासमाला, हिंदू ऐनल्स ऑफ दी प्रॉविंस ऑफ गुजरात इन वैस्टर्न इंडिया' में राणा कुंभा के संदर्भ में मीरा का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि "वह स्वयं कवि थे और प्रसिद्ध राठौड़ राजकुमारी मीरा नामक कवियत्री के पति थे।"[18] फॉबर्स ने कर्नल टॉड की ही दी गई सूचना को आधार बना लिया और क्यों बनाया इसके कारण को भी बता दिया है। संभवतः कवि कर्म मीराबाई को राणा कुंभा से जोड़ देता था। इस सूचना के भिन्न कोई सूचना फॉबर्स की रासमाला में नहीं मिलती है।

कवि कबीर की तरह मीराबाई को भी 'धर्मोपदेशिका'[19] कहा गया है। मध्यकालीन संतों द्वारा अपनी सामाजिक व भक्तिमय प्रेम की भावनाओं को पदों के रूप में प्रकट किया गया था ना कि धर्मोपदेश दिया गया था। आगे चलकर ब्रिटिश अधिकारी सर जार्ज मैकमन को मीरा गणिका समदृश्य लगती हैं।

श्री कल्याण सिंह शेखावत ने सर जार्ज मैकमन का एक कथन उद्धृत किया है– "उस शताब्दी में राजपूताना में मीराबाई हुई, जो कामलिप्सा तथा शक्ति की वैश्णव उपासिका थी, संसार के आनंदमयी प्रेमी गोपीनाथ कृष्ण की कीर्ति की

उत्साहपूर्वक गायिका थी तथा लिंग–योनि के रहस्य की उपदेशिका थी। वे वेश्याओ की गुणग्रहिका समझी जाती थी जो प्रायः यही नाम धारण करती हैं। इस नाम को गांधीग्रह में प्रवेश करने पर मिस स्लेड को धरण करने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए थी।"[20]

उपनिवेशवादी चिंतन के अनुसार भारतीय मस्तिष्क में बुद्धि होना ही असंभव थ और यदि थोड़ी बुद्धि है तो भी इतनी नहीं कि प्रशंसा की जाये। बहुत ही होगा तो उपमान पश्चिमी देशें से ही लाये जायेंगे, उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त, चाणक्य और कालिदास क्रमशः नेपोलियन, मैक्यावली और शेक्सपियर कहलाये। भले ही काल की दृष्टि से समुद्रगुप्त चाणक्य और कालिदास का समय इनसे पहले का हो। ऐसे में यह कैसे संभव था कि ब्रिटिश एडमिरल की पुत्री मेडलिन स्लेड (उर्फ मीराबेन) का गांधी आश्रम में प्रवेश हो व मीरा नाम धारण कर लिया जाये। कम से कम टिप्पणियों की प्रतिकूलता तो स्वाभाविक है। मीराबाई को भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझे बिना निर्णय स्थपित कर दिया।

वास्तव में विक्टोरियन काल की नैतिकता में बंधे अंग्रेज़ अधिकारी जब भारत पहुँचे तब भारत की संस्कृति को समझने की आवश्यकता महसूस की गई। इसी क्रम में एक ओर सूरदास की गोपियों का उन्मुक्त प्रेम था दूसरी ओर खजुराहो की मूर्तियाँ। जायसी जहाँ प्रेम व समन्वय की बात कर रहे थे तो मीराबाई उसी प्रेम को अपने जीवन में उतार लेती हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रेमतत्व व स्त्री–पुरुष संबंधों की समझ तत्कालीन विक्टोरियन समझ की तुलना में काफी उदार, संवेदनशील व मानवीय दुर्बलताओं को स्वीकारने वाली समझ थी।

मीराबाई के संदर्भों, में मीरा सामाजिक संबंधों की उपेक्षा करने पर भी प्रतिष्ठित हुई परंतु विक्टोरियन नैतिकता के मारे विद्वानों को वे वेश्या नज़र आती हैं।

पुष्टिमार्गी भी उन्हें 'दारी रांड' कहते हैं, इसलिए नहीं कि वे प्रचलित सामाजिक मान्यताओं से विपरीत प्रेम कर रहीं थीं बल्कि इस कारण कि वे पुष्टिमार्गी भक्तों की रेवड़ में शामिल रही होती हैं।

राष्ट्रवादी दृष्टि

राष्ट्रवादी चिंतन का प्रारंभ उपनिवेशवादी चिंतन के साथ ही प्रारंभ हुआ परंतु सर्वथा विपरीत व नवीन दृष्टिकोण से। जहाँ उपनिवेशवादी चिंतन में भारतीय संस्कृति व परंपरा का कोई महत्व न था वहीं राष्ट्रवादी चिंतन इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आगे आया। भारतीय इतिहास व सांस्कृतिक परंपरा के गौरवशाली महत्व पर बल दिया। इसके अतीत की व्याख्या व पुनर्व्याख्या हुई। ऐतिहासिक चरित्रों को राष्ट्रीय प्रतीक बना कर उभारा गया। सांस्कृतिक नवजागरण की लहर फैल गई। छोटी से छोटी रियासत में भी इतिहास लेखन का कार्य हुआ, पड़ताल हुई और उपनिवेशवादी चिंतन भी इतिहास लेखन का कार्य हुआ, पड़ताल हुई और उपनिवेशवादी चिंतन द्वारा प्रदत्त कई धारणाओं का खण्डन किया गया। मीराबाई के संदर्भ में देखें तो, मेवाड़ के इतिहास को जानने में महत्वपूर्ण ग्रंथ वीर–विनोद (1886) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसे महाराणा सज्जन सिंह की प्रेरणा से कवि राजा श्यामलदास ने लिखा था।

वीर–विनोद में मीरा संबंधी उल्लेख वैसे तो कम हैं परंतु जितने भी हैं, महत्वपूर्ण हैं। ये उल्लेख कुंवर भोजराज से विवाह और मेड़ता की वंशावली में मीरा का स्थान निर्धारण करते हुए आये हैं। इन दोनों ही उल्लेखों से मीरा का महत्व व ख्याति का बोध होता है।

वीर विनोद मुख्यतः मेवाड़ घराने के निर्देशानुसार लिखी गई और बैरवा भाटों (मेवाड़ के भाटों) के पास सुरक्षित रही। सत्तापक्ष ने मीरा के विषय में निश्चित दिशा निर्देश दिए होंगे। अतः मीरा के संदर्भों को बहुत विस्तार नहीं मिला है।

वीर–विनोद के बाद मुंशी देवी प्रसाद 'मीराबाई का जीवन–चरित्र' (1898) में लिखते हैं। इसमें मीराबाई के विषय में आधुनिक परिप्रेक्ष्य से विचार किया गया है। यह संभवत आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रथम जीवनी लेखन है।

मुंशी देवी प्रसाद ने श्यामलदास के 'वीर–विनोद' को आधार बनाया। इसके अतिरिक्त भक्ति परंपरा में भक्तमालों, भाटों के वंशावली स्रोत, ख्यात व राजस्थानी लोक परंपरा को इन्होंने आधार बनाया। मेवाड़ दरबार से इन्हें 'वीर–विनोद' में उपलब्ध जानकारी से भिन्न कोई नई जानकारी नहीं मिली। यह खेद की बात है कि राजकीय रेकार्डों में मीरा को उचित स्थान नहीं मिला परंतु मुंशी देवी प्रसाद लोक में प्रचलित किंवदंतियों का प्रयोग मीरा के चरित्र को उभारने में करते हैं। इससे मीरा की बहुत ही विशिष्ट छवि उभरती है। जैसे कि, मीरा का विवाह कूटनीति का परिणाम था और विधवा होने के बाद वह पूर्णरूप से भक्ति में लग गई। भक्तिमय मीरा का शाप बीजावर्गी महाजनों को आज तक लगा हुआ है कि इनके व्यापार में कभी वृद्धि नहीं होगी।

इससे भी आगे बढ़कर मीरा शक्ति का प्रतीक बन कर उभरती हैं। मालदेव के मेड़ता आक्रमण के समय मीरा भगवद् भक्ति में लीन थीं। अतः मीरा व मीरा की भूमि की रक्षा के लिए, चतुर्भुज नाथ जी नीले घोड़े पर सवार हो कर युद्ध में भाग लेते हैं युद्ध भूमि में उनका कुण्डल गिर जाता है, जिससे उस क्षेत्र का नाम ही 'कुण्डल' विख्यात हो जाता है।

मीरा की भक्ति में इतनी शक्ति है कि वे जयमल को निरंतर वंशवृद्धि का वरदान भी देती हैं। यह तथ्य इस बात का सूचक है कि भले ही राजकीय रेकार्डों में मीरा उपेक्षित हों परंतु लोक में मीरा राजपुत्रों को वरदान देती हुई विख्यात हैं। इसी शक्ति के फलस्वरूप राणा उदय सिंह विवश हुए मीरा को पुनः मेवाड़ बुलवाने के लिए। वे आई नहीं ,यह बात और है।

मुंशी देवी प्रसाद जीवगोस्वामी प्रसंग का वर्णन भी करते हैं तो साथ ही यह भी बताते हैं कि जो पत्र राणा सांगा नहीं पढ़ पाये, उनके विद्वान पंडित भी नहीं पढ़ पाये, वह पत्र मीराबाई ने तुरंत पढ़ दिया। राजधानी परंपरा की यह किंवदंती बताती

है कि मीरा केवल भक्तिपूर्ण नहीं थी बल्कि श्रेष्ठ विदूषी भी थीं। यह घटना एक बार फिर राजकीय उपेक्षिता की लोक महिमा को रेखांकित करती है।

यह प्रसंग कितने 'प्रामाणिक' हैं। यह महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण यह बात है कि इन प्रसंगों से मीराबाई की जो छवि बनती है वह एक अतिभक्तिमयी, विदूषी, दैवीय शक्ति से संपन्न महिला की बनती है। मुंशीदेवी प्रसाद कृत 'मीराबाई का जीवन चरित्त' मीरा को एक राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में उभारता है जो सभी गुणों से युक्त है।

इसी क्रम में ठाकुर चतुर सिंह जो स्वयं रूपाहेली (मेड़तियाँ ठिकाना बदनौर की शाखा) के ठाकुर थे। उन्होंने रूपाहेली शाखा के मेड़तिया राठौड़े के इतिहास को चतुरकुल चरित्त (1902) में लिखा। इन्होंने मीराबाई का विवरण मुंशी देवी प्रसाद के विवरणों से प्रभावित होकर लिखा है। मुंशी देवी प्रसाद ने जन्म दिनांक नहीं दिया था तब भी इन्होंने वि.स. 1555 (1498 ई.) तिथि दी। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि चूंकि ये स्वयं ठाकुर थे अतः मीरा प्रसंगों में सामंती सोच भी प्रदर्शित करते हैं। ये बताते हैं कि जब मीरा तीर्थ यात्रा पर गई तब बड़े–बड़े भारी लावलश्कर के साथ गई थी। जैसा कि भक्ति मुहावरे में प्रचलित है कि मीरा वीणा ले कर यात्राएँ करती हैं परंतु इन्होंने दावे के साथ इसका विरोध किया है। एक राजपूत सभ्य विधवा जो तीर्थयात्रा भी केवल इस कारण करती हैं कि मेड़ता पर किसी और शासक का अधिकार हो गया है वह निष्प्रयोजन नहीं घूम सकती। जब जयमल को मेड़ता वापस मिल गया तब मीरा उसके साथ ही साथ मेड़ता वापस आ गई।

वास्तव में, तथ्यों व वक्तव्य में फेरबदल केवल राठौड़ी शान व राजपूत स्त्री के गरिमामय रूप को दिखाने के लिए किया गया है। इन उल्लेखों में मीरा को राजपूत विधवा स्त्री की छवि में बांध कर दिखाया है जो लाव लश्कर के साथ आती जाती हैं और तीर्थयात्राएँ मजबूरी में करती हैं। मेड़ता पर आक्रमण के समय मीरा यदि जौहर कर लेती तो चतुरसिंह जी को राजपूती छवि संभवतः और भी चमकदार दिखती।

मेवाड़ दरबार का इतिहास विभाग जिसे 'महकमा तवारिख' कहा जाता था, पहले कविराजा श्यामलदास तदुपरांत पंडित गौरी शंकर ओझा संभालते थे। उन्होंने 1928 में 'उदयपुर' राज्य का इतिहास' लिखा था। इन्होंने मीरा संबंधी संक्षिप्त विवरण ही दिए हैं। कविराजा श्यामलदास का 'वीर–विनोद' इनका आधार ग्रंथ था। मीरा के विषय में इन्होंने मीरा के भजनों को समाज में लोकप्रिय तो बताया ही है साथ ही साथ मीरा को एक संगीतज्ञ के रूप में विख्यात बताते हुए मीरा के मलार राग की चर्चा की है।

उल्लेखनीय है कि मेवाड़ के इतिहास विभाग में होते हुए भी ये कुंवर भोजराज की मृत्यु की निश्चित तिथि नहीं बता पाये परंतु मीरा के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य इन्होंने बताये हैं। यह इस बात का प्रतीक है कि भले ही राजसत्ता के निर्देश रहे हों मीरा का अपना महत्व है जिसे कम नहीं किया जा सकता।

इन सभी विद्वानों के उल्लेखों से यह बात तो साफ है कि मेवाड़ राजवंश का मीरा विषयक उल्लेखों पर प्रभाव पड़ा है परंतु लोक में विख्यात मीरा इन राजकीय उल्लेखों को गौण कर देती है। धीरे–धीरे मीरा की छवि एक राजकीय उपेक्षिता से हटकर राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में परिणत होने लगती है।

राष्ट्रवाद की तीव्र भावना मीरा के विषय में नित नई किंवदंतिदयों को जन्म देने लगी। यह भावना इतनी तीव्र थी कि जहाँ उपनिवेशवादी विद्वानों को मीरा गणिका प्रतीत हुई वहाँ राष्ट्रवादी विद्वानों को मीरा भारतीय स्त्री का राष्ट्रीय प्रतीक प्रतीत होती हैं। मीरा की छवि एक आदर्श भारतीय नारी की बनाने के प्रयास होते हैं। उसमें वे सभी गुण दिखाए गए हैं जो भारतीय स्त्री में होने चाहिए।

अमरचित्र कथा में मीरा की इसी छवि को मूर्त रूप दिया गया है। इसमें मीरा बचपन से ही कृष्ण से प्रेम करती हैं। कृष्ण की छवि को मन में रखकर भोजराज से विवाह भी कर लेती हैं और आदर्श हिंदू पत्नी की तरह दैनिक कार्यों के संपादन के उपरांत पूजा–पाठ करती हैं। दुर्गा–पूजा से इंकार भी वह मृदु स्वर में लगभग रोते हुए करती हैं। पति द्वारा शक किये जाने पर वह बिना तक–वितर्क

स्वयं को नदी में डूबाने को तैयार हो जाती है और अंततः श्रीकृष्ण उसकी रक्षा करते हैं। वृंदावन में भटकते हुए वह राधा के अवतार के रूप में लोकप्रिय होती हैं और पतिव्रता का शील कुंवर भोजराज को उसे पुनः लौटा लेने को बाध्य करता है। वह धर्मोपदेश भी देती है। विक्रमादित्य के अत्याचारों से तंग होकर द्वारिका की यात्रा पर जाती हैं और वहीं कृष्ण की मूर्ति में समा जाती हैं।

आदर्श भारतीय नारी की तरह मीरा धर्म की पूर्ति पहले करती है, भक्ति का स्थान बाद में आता है। नाभादास, प्रियादास जहाँ मीरा की भक्ति बरक्स विद्रोही छवि को उभारते हैं वहीं अमरचित्र कथा में इसके विपरीत स्त्री धर्म व भक्ति साथ–साथ चलती हैं। ऐसा प्रतीत हाता है, स्त्री धर्म का पालन ही भक्ति है। मीरा का जीवन देवियों सा पवित्र तथा धर्ममय बताया है।

बंगीय हिंदू परिषद, कलकत्ता की ओर से 'मीरा–स्मृति–ग्रंथ' प्रकाशित हुआ। इसके अंत में ललिताप्रसाद सुकुल ने 'मीरा पदावली' शीर्षक में 103 पद प्रकाशित किए हैं। जो डाकोर के गोवर्धनदास भट्ट की प्रति व शेश काशी की प्रति से उद्धृत किए हैं। वस्तुतः इस ग्रंथ में भी मीरा की छवि एक आदर्श भारतीय नारी की बनाई गई है।

इससे भी आगे बढ़कर मीरा को राधा का अवतार कह कर देवी का दर्जा देने वाले भक्तों में स्वामी आनंद स्वरूप का नाम उल्लेखनीय है। इनके ग्रंथ 'मीरा सुधा सिंधु' (1957) में मीरा के लगभग सभी लिखित व मौखिक पदों का समावेश हुआ है। स्वामी जी की दृष्टि भक्तिपूर्ण है अतः भावुकता की अतिश्यता के कारण वे मीरा की भविष्यवाणी की ओर उल्लेख करते हैं।

"यह कहत गावत सुनत समुझत परम पद नर पावही।
कलिकाल श्री आनंद स्वरूपा दास मीराँ गाव ही।।"[21]

उनके अनुसार यह भविष्यवाणी बताती है कि कलियुग में दास आनंद स्वरूप मीरा देवी का गुणगान करेंगे। स्वामी जी भक्तिवश मीराबाई को आदर्श स्त्री नहीं कहते बल्कि राधा का अवतार ही कह देते हैं। विवाह प्रसंग में वे सभी रीति–रिवाज कृष्ण से होने की बात कहते हैं जो भारतीय स्त्री के एक ही पति की पत्नी बनने से

जुड़ती है। मीरा की बुद्धिमत्ता दिखाने के लिए जीवगोस्वामी प्रसंग में मीराबाई उत्तर संस्कृत में 'वासुदेवः पुमनेकः स्त्रीमयमितरज्जगत्' देती हैं। और अंत में मीरा के कृष्ण विलीन होने के बाद सभी भक्त 'भगवती मीरा माता की जय' कहते हैं जो मीरा के दैवीय स्वरूप को बताता है।

इसी क्रम में गीता प्रेस, गोरखपुर से छपी पुस्तिका में भी मीराबाई को आदर्श हिंदू स्त्री और कुछ आगे बढ़कर देवी की संज्ञा दी है। इस पुस्तिका के उल्लेख हूबहू अमरचित्र कथा से मिलते जुलते हैं। इसमें मीराबाई की शुचिता पर बल दिया गया है। पूजा पाठ करने का उल्लेख है। इसमें मीरा के गुरु रैदास बताये गए हैं जो सगुण व निर्गुण के समन्वय के प्रतीक हैं। मीरा को अपनी मृत्यु का बोध पहले से ही हो गया था। अतः प्रत्येक व्यक्ति के प्रश्नों का उत्तर वे देती हैं। रोचक तथ्य यह है कि इसमें मीरा की मृत्यु के बाद के संदेश को उद्धृत किया गया है जो ऐसा लगता है मानो नैतिक कहानी के बाद सार रूप में शिक्षा दी गई हो। संदेश है कि ईश्वर विरह की अग्नि में स्वयं को जला लेना चाहिए। इससे ईश्वर की प्राप्ति होती है। ऐसा योग व ज्ञान आधारित क्रियाओं से नहीं होता। यह तो वह उपहार है जो ईश्वर स्वयं वरदान के रूप में देता है।

पदावलियाँ

राष्ट्रवादी चिंतन के फलस्वरूप मीरा एक राष्ट्रीय प्रतीक बन जाती हैं। और अधिक पदों को संकलित करने का कार्य जोर–शोर से शुरु हो जाता है। इस क्रम में कई पदावलियाँ प्रकाशित हुई परंतु मुख्यतः मुशी देवी प्रसाद कृत 'महिला मृदुवाणी' (1905), वियोग हरि द्वारा संपादित 'मीराबाई सहजोबाई दयाबाई का पद संग्रह (1930), 'मीरा मंदाकिनी (1930)' जो नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित था। पं. परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'मीराबाई की पदावली (1932) बहुत विशिष्ट स्थान रखती हैं। पद्मावती शबनम द्वारा संपादित मीरा वृहद्–पद–संग्रह (1952) भी हैं और लोक में प्रचलित लगभग सभी मीरा पदों को एक जगह समेटने का कार्य स्वामी आनंद स्वरूप ने 'मीरा–सुधा–सिंधु' (1957) में किया था। मीराबाई के पद–संग्रह की इतिश्री यही नहीं है बल्कि यह कार्य आज भी निरंतर चल रहा है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'मीराबाई की पदावली (1932) में छपी थी। इस पदावली के इक्कीस संस्करण आ चुके हैं। मीरा के प्रामाणिक पाठ की दृष्टि से यह विश्वासनीय मानी जा सकती है। चतुर्वेदी जी की दृष्टि संतुलित व सधी हुई है। मीरा को वे सगुण व निर्गुण के बीच की कड़ी मानते हैं। वे बताते हैं कि मीरा के जीवन काल का एक महत्वपूर्ण अंश उदयपुर के प्रसिद्ध महाराणा वंश के साथ व्यतीत हुआ था। वास्तव में, यह समझना होगा कि चतुर्वेदी जी जिस वंश की बात कर रहे हैं वह सिसोदिया वंश है और वह वंश संपूर्ण मेवाड़ में महत्वपूर्ण था केवल उदयपुर में नहीं।

सच्ची राजपूत रमणी की छवि में बांधते हुए वे कहते हैं कि "उनको हृदय पर एक सच्ची राजपूत रमणी के साहस एवं निष्ठा की गहरी छाप लगी हुई थी। अपने लक्ष्य की रक्षा अथवा व्रतपालन की चेष्टा में वे उस आदर्श के अनुसार अपना सर्वस्व तक उत्सर्ग करने पर आमरण उद्यत रहीं।" 22

संग्रह के क्रम में ही कल्याण सिंह शेखावत द्वारा संपादित 'मीरा–वृहद्पदावली (भाग–2) (1975) का भी उल्लेखनीय स्थान है। इसमें लिखित परंपरा के पदों को ही स्थान दिया गया है। पदों का अधिकधिक प्रामाणिक बनाने के लिए ये केवल मारवाड़ी भाषा के पदों को ही स्वीकारते है और उन्हीं पदों को अधिक विश्वसनीय समझते हैं जो मीराबाई के जीवन से जुड़े स्थानों में प्राप्त हैं। भाव साम्यता व गेय पदों को प्रमुख स्थान मिला है। पदो के संबंध में इतनी सीमाएँ रखने के बाद पदों कीसंख्या 372 हो गई है। भ्रमरगीत परंपरा के उद्धव संबोधित पद भी मिलते हैं।

"मीरा का काव्य" (1979) में विश्वनाथ त्रिपाठी जी की वर्णव्यवस्था, नारी और भक्ति आंदोलन आदि विषयों पर सविस्तार चर्चा करते हुए बताया है कि "भक्तिकाल में भक्तकवियों का विरोध भावनात्मक स्तर पर था। इस विरोध का आधार भक्तकवियों का व्यक्तिगत अनुभव था, इसके पीछे कोई सजग व्यवस्था विरोध नहीं था। वे विरोध उस अमानवीयता का करते थे जो भक्ति, सदाचार और करुणा के आड़े आती थी।" 23

त्रिपाठी जी मध्यकालीन समझ को व्याख्यायित करते हुए बताते हैं कि मीरा भक्त होने के लिए विद्रोह कर उठती है। वे विद्रोह करने के लिए विद्रोह नहीं करती हैं। त्रिपाठी जी भी मीरा को सगुण व निर्गुण के बीच की कड़ी मानते हैं। वे कहते हैं कि "उनकी रचनाओं पर निर्गुण, सगुण, सूफीमत, नाथपंथ सबका प्रभाव दिखाई पड़ता है।"24

त्रिपाठी जी भक्तिकालीन संदर्भों की व्याख्या करते हुए आधुनिक उदाहरणों से समझाते चलते हैं जो उनकी विशिष्ट पद्धति है। वे मीरा की ससुराल मरुधरा बताते हैं और मीरा को उदयपुर से संबंधित कर देते हैं जो एक तथ्यात्मक भूल है किंतु व्याख्यात्मक तत्व श्रेष्ठ बन पड़ा है।

डॉ.बलदेव वंशी द्वारा संपादित 'संत मीराबाई और उनकी पदावली' में शीर्षक से ही स्पष्ट है कि मीरा को निर्गुण भक्तों की कोटि में रखते हैं। वे कहते हैं कि रैदास के मिलने से मीरा निर्गुण रंग में रंग जाती हैं बालपन में वे सगुण भक्ति और ज़ैसे–जैसे प्रौढ़ वय को प्राप्त करती हैं वे निर्गुण व नाथ पंथी प्रभाव से प्रभावित होकर संत बनती हैं। वे मीरा को स्त्री विमर्श की प्रणेता भी मानते हैं जिसका विवरण आगे के पृष्ठों में किया जाएगा।

मीरबाई को कबीर, दादू, रैदास, पलटू आदि की संत परंपरा में ठहराने और बहुत कुछ नानक की सी शैली के करीब करने का प्रयास राधास्वामी सतसंग व्यास, अमृतसर से प्रकाशित 'मीराः प्रेम दीवानी' में किया गया है। संत मत में व सिक्ख समुदाय में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है अतः इस में भी उन्हीं पदों को संकलित किया गया है जो मीरा ने गुरु रविदास के संपर्क में आने के बाद रचे थे। मीरा के पदों में संतों की शिक्षा का प्रभाव भी दिखता है। मीराबाई के चरित्र व पदों में संत मत की सभी विशेषताओं को दिखाया गया है। खण्डन–मण्डन, जाति–प्रथा का विरोध, गुरु महत्व, ईश्वर के नाम का महत्व है परंतु उनमें कबीर की सी तीक्ष्णता नहीं बल्कि नानक की विनम्रता दिखती हैं। यहाँ तक कि मीरा के प्रभाव के ही कारण अकबर उदार दृष्टि का हो जाता है। बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए मीरा कहती हैं कि –

"साधन करना चाही रे मनवा, भजन करना चाही।

....

नित नहान से हरि मिले, तौ मैं जल जंतु होई।
फूल–फल खाये हरी मिले, तो मैं बानर बंदर होई।।

....

मीरा कहे बिना प्रेम के नहिं मिले नंद लाला।" 25

भाव संप्रेषण के लिए पद के शब्दों में हेर–फ़ेर भी किया गया है। धरती में हल चलाकर खेती करने व बीज बोने के उदाहरण द्वारा मीरा नाम के अभ्यास, नाम के प्रकाश और आवाज़ का वर्णन करती हैं। वे कहती हैं कि,

"सूरत निरत का बैल बनाया जब चाहो तब जोती।। 26

इस पुस्तक के सभी उल्लेख 'मीरा सुधा सिंधु' से लिए गए हैं जो मीरा के लिखित, मौखिक व मीरा छाप के सभी पदों के संकलन के लिए जाना जाता है।

मीरा को संत मत का अनुयायी सिद्ध करने वाले विद्वानों में पीताबरदत्त बड़थ्वाल जी का नाम विशिष्ट है। अपने निबंध 'मीरबाई और वल्लभाचार्य' में वे बताते हैं कि मीरा को पुष्टिमार्गी दीक्षा देने क़ी आवश्यकता इसलिए नहीं पड़ी क्योंकि मीरा पर तो पहले से ही कोई और रंग चढ़ा हुआ था।' वे बताते हैं कि मीरा क़ा ध्यान अवतार की ओर नहीं ब्रह्म की ओर था। पीतांबर बड़थ्वाल मीरा को संत मत का सिद्ध करते हुए इस प्रकार कहते हैं–

"सूरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हरी का तेल बना ले जगा करे दिन राती।।"

कबीर से तुलना करते हुए वे कहते हैं कि–"यह कबीर की निर्गुण भावना के सर्वथा मेल में है उसी तात्पर्य के सहित कबीर की प्रायः सारी शब्दावली मीरा में मिलती है। कबीर से यदि मीरा में कोई अंतर है तो यही कि मीरा को मूर्तियों से चिढ़ नहीं।" 27

निष्कर्षतः वह कहते हैं कि "उसकी सगुण भवना निर्गुण भावना प्रतीक मात्र थी।" 28

पद संग्रह के क्रम में मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़ से प्रकाशित पुस्तक 'मीरा पदमाला' में मीरा के 108 पदों का संकलन किया गया है। कल्याण सिंह शेखावत, सी.एल. प्रभात, डॉ. हुकुम सिंह भाटी आदि अन्य विद्वान इसके संपादक गण रहे हैं। इससे हमें कोई नई सूचना तो नहीं मिलती किंतु यह विश्वास प्रकट किया गया है कि मीरा को कष्ट देने में महाराणा विक्रमादित्य की आड़ में बनवारी का ही हाथ था। क्या यह चित्तौड़ के शासक वंश की साख बचाने का प्रयास नहीं क्योंकि बनवारी राणा सांगा के बड़े भाई पृथ्वीराज की पासवान (उच्च दासी) से पैदा हुआ पुत्र था।

स्त्री विमर्श

स्त्री विमर्श के उदय के साथ–साथ मीराबाई को भी इस दृष्टि से देखने के प्रयत्न हुए हैं। स्त्री विमर्श के तार मीराबाई से भी जोड़े जा रहे हैं। उन्हें स्त्री–विमर्श की प्रेरणा भी माना जा रहा है। यह वास्तविकता है या आवश्यकता, इसकी पड़ताल आवश्यक है। ड़ॉ. बलदेव वंशी मीराबाई के विषय में कहते हैं कि– "मीराबाई ने स्वयं मुक्त हो कर अपने समय और युग की नारी को भी देश–समाज के मानव एवं मानवता को भी मुक्त किया। मध्ययुग में ही आधुनिक मानव की मुक्ति का बिगुल बजाने वाली स्त्री संत, आधुनिकता के नारी–विमर्श का बीजवपन करने वाली मीरां अपने जीवन में तथा मृत्यु में भी मुक्त रही।" 29

डॉ. बलदेव वंशी मीरा को स्त्री–विमर्श की प्रणेता मानते हैं तो डा. सी.एल. प्रभात का मानना है कि "उनके गीतों में उनकी भक्ति ही नहीं बोलती, विश्व की 'आधी मानवता' का दुःख–दर्द और विद्रोह भी बोलता है।"30

स्त्री विमर्श के मूल में स्त्री जीवन का रेखांकन है। उसकी संवेदना, समझ, पीड़ा व विद्रोह का चित्रण है। मीराबाई भी स्त्री के लिए बनाए गए नैतिक मानदण्डों को तोड़ती है। उन्होंने वही किया जो उन्हें उचित लगा। बिना दबाव व बिना आत्मग्लानि के।

भक्तिआंदोलन का प्रारंभ ही भेदभाव को तोड़ने वाला था। इसके साथ ही भक्ति आंदोलन नारी को भी उसी तरह घर से बाहर आने का निमंत्रण देता था,

जिस प्रकार पुरुष को। लेकिन सामंती व्यवस्था नारी को घर से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं दे सकती थी। मीरा के जीवन का यही मूल संघर्ष था।

इस क्रम में वे तथाकथित स्त्री धर्म के सभी नैतिक नियमों को ताक पर रख देती हैं। वे अपने प्रेम के सत्य पथ पर चलती रहती हैं। अपने सत्य को बताने के लिए उन्हें न तो किसी को गाली देने की जरूरत थी और न ही कटुक्तियाँ करने की परंतु फिर भी मीरा अपने ही ढंग से सामंती सोच व पुरुषवादी दृष्टिकोण का सशक्त विरोध करती हैं। वे कह उठती हैं कि –

'राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निंदों कोई बिंदो मैं चलूँगी चाल अनूठी।।"(पद–33,परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित पदावली)

वे अपने सत्य से सिसोदिया राणा का प्रभामण्डल मानने से इंकार कर देती हैं। प्रसंग है कि, महात्मा बुद्ध को एक व्यक्ति ने बहुत कटुवचन और गालियाँ दीं परंतु महात्मा बुद्ध ने केवल इतना कहा कि मैं इन्हें स्वीकार नहीं करता। यहाँ इस प्रसंग को देने का आशय यह है कि मीराबाई को भी राणा परिवार की ओर से स्त्री धर्म का पाठ, लोभ, भय व निंदा मिली परंतु मीरा उन्हें स्वीकार नहीं करती और अपनी धुन में आगे बढ़ती रहती हैं। निर्भय हो वे कहती हैं –

"सीसोधयो रुठ्यों तो म्हाँरो काँई कर लेसी ।
म्हें तो गुण गोविंद का गास्याँ, हो माई।।
राणो जी रूठ्याँ बाँरो देस रखासीं।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ हो माई।।"'(पद–35,परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित पदावली)

मीरा ने अपनी राह बनाई और चलती रही। अब ये राह किसी को पसंद आये ना आये, ये मीरा के लिए महत्वपूर्ण नहीं है। यही निडरता, निर्भीकता मीरा को स्त्री आंदोलन से जोड़ती है।

आधुनिक संदर्भों में मीरा को देखना उचित है परंतु यह अनुचित होगा कि मीरा को केवल 'विद्रोहिणी' के रूप में ही देखा जाए। इस क्रम में मीरा के शेष व्यक्तित्व को नकारना नहीं चाहिए।

मीरा प्रेममयी व भक्तिमयी हैं और इसी के साथ विद्रोही भी, यह तथ्य नहीं भूलना चाहिए।

मीराबाई का जीवन संघर्षपूर्ण और उनका विरोध मुखर था। उन्हें जो अनुचित लगा उन्होंने कहा परंतु इस विरोध के पीछे मूल संबल प्रेम व भक्ति ही थी। श्री कृष्ण प्रेम उन्हें नैतिक बल देता था। ध्यान देने की बात है कि **मीरा प्रेम करती हैं और यही उनकी स्वतंत्रता** है। परंतु किसी भी प्रतिक्रिया में नहीं बल्कि उसे अपने जीवन का आधार बना कर। अपने बंधनों को देखकर मीराबाई 'प्रेम' व 'काम' को अपनी मुक्ति का ज़रिया नहीं बनाती हैं।

स्त्री विमर्श के प्रसंग में हम देखते हैं कि आवेश में अति होने पर पुरुषवाद के स्थान पर पुरुष मात्र के विरोध तक पहुँच जाने की दशा आ जाती है। लेकिन मीरा तो पुरूष कृष्ण के प्रेम की दीवानी हैं। श्री जीवगोस्वामी को भी उन्होंने भलीभाँति समझा दिया था कि कृष्ण ही संसार में एकमात्र पुरुष हैं। मीरा सामंती व्यवस्था की विरोधी हैं, पुरुष मात्र की नहीं।

पद्मावती शबनम का विचार है कि मीरा के पदों में उद्धृत 'उदा' या 'ऊदौ' मीरा की ननद नहीं देवर का नाम था। इन्होंने रूपक गायकों की शैली में प्राप्त ऐसे पदों का संकलन किया है जो मीरा व उदा के संवाद रूप में हैं। इनमें उदा, मीराबाई को स्त्रीधर्म का पाठ पढ़ा रही हैं। भला एक स्त्री कैसे दूसरी स्त्री को स्त्री–धर्म का पाठ पढ़ा सकती है, यह काम तो पुरुष का है अतः उदा को ननद कहने की बजाय देवर कह दिया गया है। ऐसा कहने के पीछे कोई ऐतिहासिक राजनैतिक तथ्य प्राप्त नहीं होता है।

वास्तव में, मीरा स्वयं को स्त्री–पुरुष के एकांगी दृष्टिकोण में नहीं बांधती हैं। वे भक्त हैं, प्रेममयी हैं अतः वे स्वयं को मनुष्य मात्र मानती हैं। ईश्वर के समक्ष स्त्री व पुरुष के भेद मिट जाते हैं और रह जाती है केवल भक्ति और भक्ति की सार्थकता। मीरा स्वयं को प्रकृति का एक हिस्सा मानती हैं। जिसका दूसरा हिस्सा पुरुष है जो कृष्ण रूप में उनके समक्ष है। मीरा का प्रेम इन दोनों हिस्सों का मिलन है ना कि नकार, प्रतिरोध या विद्रोह।

एक कहानी है कि, टोपीवाले की सभी टोपियाँ बंदर पहन लेते हैं फिर अपनी टोपियाँ वापस लेने के लिए बुद्धिमान टोपीवाला अपनी टोपी उतार कर फेंक देता है तो सभी बंदर भी फेंक देते हैं। कुछ ऐसा ही स्त्री–विमर्श के साथ हो रहा है। इसका लक्ष्य श्रेष्ठ है किंतु राह भूली हुई। स्त्री को आज सबसे बड़ी जरूरत है, अपना अस्तित्व स्वयं में जानने की न कि दूसरों को जनवाने की। समान अधिकार व स्वतंत्रता का लक्ष्य श्रेष्ठ है किंतु इस क्रम में स्त्रियाँ पुरुष की अनुगामिनी या प्रतिकारिणी दो ही रूपों में नज़र आती हैं। पुरुष टोपी फेंकता है तो समान अधिकार के क्रम में स्त्रियाँ भी अपनी अपनी–अपनी टोपियाँ फेंक देती हैं।

वास्तव में, जब तक स्त्री अपने स्वरूप अपने अस्तित्व को पूर्णता में नहीं समझेंगी तब तक सामाजिक बंधन तो क्या, स्वयं के मन में चलने वाले अंतर्विरोध से भी मुक्त नहीं हो पायेंगी।

अपने अस्तित्व को पहचानने के लिए प्रेम का होना बहुत महत्वपूर्ण है और मीरा भी इसी का संदेश देती हैं। मीरा के लिए प्रेम सभी दुविधाओं का अंत है और सभी सुविधाओं का त्याग भी। मीराबाई में अपने स्त्री होने को लेकर किसी भी किस्म की कोई लज्जा या अबला होने का भाव न था। स्त्री होना उनकी सबसे बड़ी ताकत है जिससे प्रेम निवेदन में कोई कठिनाई नहीं होती, बाह्य रूपों का प्रोग नहीं करना पड़ता। मीरा का स्त्रीत्व व प्रेम इतना मजबूत है कि वे कृष्ण को भी फटकार लगा सकती हैं। वे उसकी 'निरीह भक्त' नहीं बल्कि प्रेममयी पत्नी के रूप में व्यवहार करती हैं। वे उलाहने देती हैं कि

"देखाँ माई हरिमण काठ कियाँ।
आवण गह गयाँ आजा ण आयाँ, कर म्हाने कोल गयाँ।।"(पद–52,परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित पदावली)

परंतु क्रोध की अधिकता में कह उठती है कि 'जोगियारी प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल। हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावे भूल।" उन्हें गुमानी कृष्ण पर बहुत क्रांध आता है और वे कहती हैं कि –

"जाओ निरमोहड़ा रे, झीणी थाँरी प्रीत।

लगन लगी तब और प्रीतछी अब कुछ अवली रीत।
अमृत पाय विष क्यूँ, दीजै, कौण गाँव की रीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, आप गरज के मीत।।"(पद–57,परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित पदावली)

मीरा का जीवन विरोध का मुख स्वर है। वे परंपराओं को तोड़ती हैं परंतु उनमें न तो शकुन [31] की तरह असमंजस है और ना ही मनु [32] की तरह अति मुक्त यौवन प्रदर्शन।

मीरा 'तन से परे' है और मन तक भी जाती है। उनकी दृष्टि में न तो तन का नकार है और ना ही उन्मुक्त प्रदर्शन। जो भी है, सहज है। ऐसा ही नहीं था कि मीरा ने स्वयं को मर्यादित करने की कोशिश की थी। यह प्रेम की सरलता है जो मीरा को सहज बनाती है। मीरा के पदों में माई, सखी आदि संबोधनों के भी स्त्रीवादी दृष्टि से भिन्न–भिन्न निष्कर्ष निकाले गए। विश्वनाथ त्रिपाठी जी का कहना है कि 'इस अबलापन का स्वाभाविक परिणाम था कि मीरा अपनी सजातीय अर्थात् अन्य स्त्रीजनों का उल्लेख पुरुष भक्त कवियों की तुलना में अधिक करती हैं।" [33]

वहीं दूसरी ओर मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि, "मीरा की सामाजिक सजगता का प्रमाण यह भी है कि उन्होंने जहाँ भी सामंती समाज की रूढ़ियों को चुनौती दी है, वहाँ समानधर्मा सखी या माँ को ही संबोधित किया है, भाई या पिता को नहीं।" [34]

मीरा या तो अबला है या सबला। स्त्रीवादी रूप उनकी एकांगी व्याख्या कर देता है। मीरा में संवेदना है इसलिए अपने दुख को प्रकट करने के लिए अपनी माई या सखी को संबोधित करती है। वह जानती है कि माई से ज्यादा उनके दुख़ को कोई नहीं समझता और माई का यह स्वरूप एक पुरुष भक्त के लिए भी वैसा ही होगा। इसी संदर्भ में देखें तो कबीर भी साधु–संतों को संबोधित करते हैं परंतु वे कोई पुरुष–विमर्श नहीं चलाते और ना ही अपने सजातीय शक्तिशाली बंधुओं को याद करते हैं। उनके 'साधु' का सरल सा अर्थ है– लोक के सज्जन व्यक्ति।

वास्तव में, इन भक्तिकालीन संतों की एकांगी व्याख्या व्यर्थ है क्योंकि ये विराट रूप में समन्वय, समानता की बात करते हैं अतः उन्हें एक निश्चित छवि में बांध देना गलत होगा। ये संत मानवीय संवेदनाओं, दुर्बलताओं से पूर्ण हैं। इसी कारण वर्जनाओं व बंधनों का नकार भी करते हैं परंतु केवल नकार को देखना गलत होगा। इस विद्रोह के पीछे की संवेदना को भी समझना चाहिए।

परिता मुक्ता ने मीराबाई पर अध्ययन करते हुए लोकगीतों के माध्यम से मीरा की व्रिदोही छवि को बताया है। इसमें बताया गया है कि मीरा विवाह का विरोध स्पष्ट स्वर में करती है और विवाह सामग्री दासी को देने की बात कही हैं। राणा के लिए अपना बायाँ हाथ आगे बढ़ा देती है जो को पति मानने के विरोध का प्रतीक है। मीरा की मृत्यु के संदर्भ में उनका मानना है कि मीरा कव विलीनीकरण मूर्ति में नहीं बल्कि पश्चिम भारत की उन जातियों में हुआ जहाँ स्त्रियाँ राजपूत समाज की तुलना में अधिक स्वतंत्र थीं। परंतु इसके साथ–साथ यह भी एक तथ्य है कि सामंती व्यवस्थ व सोच सिर्फ राजपूताना में नहीं बल्कि संपूर्ण भारत में फैली हुई थी।

वास्तव में आधुनिक समझ से इन मध्यकालीन संतों को समझना उचित है किंतु अध्ययन एकांगी न हो जाए, इस बात का ध्यान रखना चाहिए। सभी मध्यकालीन संत आदर्शों का पिटारा भर नहीं हैं बल्कि संवेदनशील मनुष्य भी हैं जिनके अपने सुख–दुख हैं। जिस तरह कबीर काशी छोड़कर मगहर चले तो आते हैं परंतु बाद में अपनी काशी को बहुत याद करते हैं और कहते हैं कि –

"ज्यों जल छाड़ि बाहर भयो मीना।
पूरब जनम हौं तप का हीना।।
अब कहौ राम कवन गति मोरी।
तजीले बनारस मति भई थोरी।। 35

प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल कहते हैं कि–''विद्रोही तेजस्वी व्यक्ति मशीन नहीं होता। हर हालत में उसकी प्रतिक्रियाएँ प्रोग्राम्ड नहीं होतीं। परस्पर विरोधी भावनाएँ मन में आती हैं और ईमानदार कवि अपनी संवेदना के किसी सहज पल को सेंसर

करने की जरूरत नहीं समझता। उसे अपनी मानवीय समग्रता में विद्रोह और भावुकता को एक साथ प्रकट करने में कोई उलझन नहीं होती। 36

इन सभी मध्यकालीन संतों के अध्ययन में दृष्टि की मुक्तता, समन्वयता अति आवश्यक है। मीरा के संदर्भ में कहें तो, मीरा को स्त्री–विमर्श से जोड़ना उचित है क्योंकि मीरा में नारी की शाश्वत भावनाओं को, मानवीय दर्द देखा जा सकता है। इसके साथ ही मीरा में 'विद्रोही' व्यक्तित्व से शेष व्यक्तित्व की अपनी महत्ता है जैसे नकारा नहीं जाना चाहए। अन्यथा मीरा की व्याख्या एकांगी हो जाएगी और यह मीराबाई जैसे व्यक्तित्व के साथ वर्तमान का अन्याय होगा।

सन्दर्भ :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ' हिंदी साहत्य का इतिहास' नई दिल्ली, 2005, पृ.145

2. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास', नई दिल्ली, 1952, पृ.111

3. वही, पृ.112

4. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय हिंदी साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद, 2001, पृ.170

5. रामस्वरूप चतुर्वेदी 'हिंदी साहित्य और संवेदना का इतिहास, इलाहाबाद, 1986, पृ.50

6. बच्चन सिंह 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास', नई दिल्ली, 1996, पृ.132

7. वही, पृ.133

8. वही, पृ.134

9. वही, पृ.134

10. वही, पृ.134

11. विश्वनाथ त्रिपाठी 'हिंदी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास', एनसीईआरटी, 1986, पृ. 44

12. वही, पृ.45

13. श्री जयंत कृष्ण हरिकृष्ण दवे 'गुजराती साहित्य का इतिहास', लखनऊ, 1963, पृ.82

14. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी 'मीराबाई की पदावली', प्रयाग, 2002, पृ.108, पद–40

15. श्री जयंत कृष्ण हरिकृष्ण दवे 'गुजराती साहित्य का इतिहास', लखनऊ, 1963, पृ.83

16. महणोत नैणसी री ख्यात, संपादक–बदरी प्रसाद साकरिया, भाग–1, पृ.21

13. ले. जेम्स टॉड, 'पश्चिम भारत की यात्रा', अनुवादक – गोपाल नारायण बहुरा, पृ.442

18. डॉ. सी.एल. प्रभात – ' मीरा : जीवन और काव्य जोधपुर, 1999, पृ.91

19. इंसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ऐथिक्स', संपा– जेम्स हेस्टंग्स, एडिनबरा, 1918

20. प्रो. कल्याण सिंह शेखावत, मीराबाई ग्रंावली–1 (मीराबाई की जीवनी) , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2001–पृ–37

21.स्वामी आनन्द स्वरूप 'मीरा सुधा सिन्धु, जोधपुर, 1957, पृ–ड़

22. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी 'मीराबाई की पदावली, प्रयाग प्रकाशन, 2002,पृ–83

23. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, मैकमिलन, 1979, पृ–46

24. वही, पृ–49

25. वीरेन्द्र सेठी , मीराः प्रेम दीवानी, राधास्वामी सत्संग व्यास, अमृतसर, 1980, पृ–27

26. वही, पृ–47

27. डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के श्रेष्ठ निबंध, संपादक– डॉ. गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ–78

28. वही, पृ–80

29. बलदेव वंशी, संत मीरांबाई और उनकी पदावली, दिल्ली, 2008, पृ–7

30. सी. एल. प्रभात, मीराः जीवन और काव्य, जोधपुर, 1999, दो शब्द–1

31. मन्नू भंडारी, ''आपका बंटी'', पात्र–शकुन

32. मृदुला गर्ग, ''चित्तकोबरा'', पात्र– मनु

33. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, मैकमिलन, 1979, पृ–48

34. प्रो. मैनेजर पाण्डेय, अनभै साँचा, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ–22

35. प्रो. पुरूषोत्तम अग्रवाल, कबीरः साखी और सबद, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2007, पृ–18

36. वही, पृ–19

अध्याय तीन

लोकचित्त में मीरा : *अेकर मीराबाई आंगणिये पधारो*

अध्याय तीन

लोक बहुत व्यापक भाव है। अपने अस्तित्व के मूल में यह अति सूक्ष्म भी है और अनंत भी। वास्तव में, लोक शब्द में इहलोक, परलोक सब कुछ शामिल है परंतु संवेदना के स्तर पर यह 'सहज लोक' है। सहजता, सरलता इसका स्थायी गुण है। यह इतना सहज है कि परलोक की कल्पना तो करता ही है साथ ही साथ नरक की कल्पना भी उतनी ही सरलता से कर लेता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं क "लोक.... नगरों और ग्रामों में फैली हुई, वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासता और सुकुमारता को जीवत रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको संपन्न करते हैं।"1

लोक की अपनी दृष्टि, गति व समझ होती है। नदी की धारा की भाँति यह निरंतर चलायमान है। जिसके अपने रीत–रिवाज़, गहन विश्वास व मान्यताएँ हैं। लोक का अपना महत्व है और इस महत्व को मध्यकाल में सर्वाधिक पहचाना गया। लोक से जुड़ने के कारण ही भक्तिकाल स्वर्णकाल कहलाया। मध्यकालीन संतों के लिए भक्ति मोक्ष प्राप्त की कामना भर नहीं बल्कि आनंदानुभूति का मार्ग थी। यह आनंद उन्हें ईश्वर से जुड़कर, लोक से जुड़कर प्राप्त हुआ। वे कहीं भी लोक से विमुख नहीं होते बल्कि लोक उनके साथ निरंतर चलता रहता है।

कबीर की वाणी में लोक बोलता है तो तुलसीदास के राम लोक–व्यवस्था के प्रतीक बन जाते हैं। राम वास्तविक अर्थों में 'राम' तभी बन पाये जब वे सीता के साथ लोक के निकट आये। जायसी जिस प्रेम की बात कर रहे थे, सूरदास ने उसे कृष्ण का रूप देकर लोक के साथ जोड़ दिया। कृष्ण व लोक का गहरा नाता है। मीरा के संदर्भ में कृष्ण तक लोक की वाणी पहुँचने वाली मीरा वास्तविक अर्थो में लोकनिधि हैं।

मीरा के जीवनकाल में ही उनके पदों की ख्याति हो गयी थी। इसीलए पुष्टमार्गियों ने नाना प्रकार के जतन कर उन्हें अपने संप्रदाय में बाँधने की कोशिश

की परंतु जब असफल रहे तब खीज कर मीरा को दारी राण्ड तक कह डाला। वास्तव में मीरा ने किसी संप्रदाय से बंधकर विशेष प्रकार की पद रचना को नहीं स्वीकारा बल्कि मीरा ने लोक वाणी को, उसके सहज व सरल रूप में, कृष्ण के समक्ष गाने की महत्ती जम्मेदारी का निर्वहन किया था। इसी क्रम में मीरा ने पुष्टमार्गी धारा के प्रतिकूल 'रिरयाने वाले' वाले पद भी गाये हैं तो अनुकूलता में लीला पद भी गाये हैं। वे कृष्ण के अमूर्त रूप को भी गाती हैं तो दादुर, मोर, पपीहा की दुहाई देकर पति को विदेश से घर आने की बात भी कहती हैं। मीरा की दृष्टि लोक की तरह समृद्ध, समंवयी व सरल है। इसी कारण मीरा के पदों को लोक ने विविध राग–रागिनियों व भाषाओं में ढाला और मीरा लोक को वाणी देने वाली लोकनिधि बनीं।

मीरा ग्राम बाला की तरह गाती हैं, बजाती हैं और घुंघरू पहन कर प्रिय को रिझाती हैं। वे प्रेम की भाषा जानती हैं और प्रेम को अभिव्यक्त करती हैं जो लोक का सबसे शक्तशाली पक्ष है। ध्रुवदास ने भक्त–नामावली में भी कहा है कि –

"नृत्यत नुपुर के गावत लै करताल।
विमल हयो भक्तन मिली, त्रन सम गनि संसार।।"2

मीरा के नृत्य से किसी शास्त्रीय नृत्य पद्धति का आरंभ नहीं हुआ ना ही गायन से, परंतु जिस लोक रंग–रूप में मीरा ने गायन–वादन–नर्तन किया वह आज भी लोक के पास सुरक्षित है। यही कारण है क मीरा को समझने के लए छंद, अलंकार व अभ्यास की नहीं बल्कि भावना की जरूरत पड़ती है। मीरा ने कृष्ण के समक्ष लोक की वाणी पहुँचाई अब लोक मीरा की वेदना को कृष्ण के समक्ष झूम–झूम कर गा रहा है।

मीरा की लोक प्रसिद्धि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि

"नीराँ शरे प्रयाग जल, वीराँ शरे जयमल्ल,
कोहनूर हीराँ शरे, मीराँ शरे महल्ल।"

लोक का अपना समाज शास्त्र होता है, अपने ही नियम होते हैं। उन्मुक्त रूप में लोक इतना मुखर है कि विवाह आदि के अवसर पर 'गाली गाने' की परंपरा

है तो संवेदना के स्तर पर मृत्युपरांत निरगुन गायन की परिपाटी है। लोक जीवन का राग गाता है तो मृत्यु का उत्सव भी मानता है।

लोक ने मीरा को समय–समय पर अपनी कसौटी पर परख कर अपने निष्कर्षों को किंवदंतियों के रूप में प्रकट किया है। मीरा की लोक छवि को जानने का सशक्त माध्यम किंवदतियाँ ही हैं।

मीरा के पितृवंश के लिए कहा जाता है कि 'जानरा उदा और मरण रा दूदा' अर्थात बारात में जाने के लिए उदावत राठौड़ और युद्ध में मृत्यु के लिए तत्पर मेड़तिया राठौड़ हुआ करते हैं। यही कारण है कि मीरा का विवाह शक्तिशाली मेवाड़ वंश के साथ हुआ था। मीरा ऐसे वंश में जन्मीं और प्रेम का राग गाया।

जिस प्रकार जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ बताई गई हैं। उसी प्रकार की परंपरा मीराबाई के साथ भी जुड़ती हैं। यहाँ भारतीय संस्कृति की पुनर्जन्म की अवधारणा को बल मिलता है। जब मीरा को राधा का, ललिता, चंपकलता, मिथुला या बरसाने की अनाम गोपी का अवतार माना गया। किंवदंती है कि घूंघट रखने के कारण गोपी को कृष्ण के दर्शन नहीं हुए। परंतु, जब कृष्ण गोवर्धन पर्वत को ऊंगली पर उठा कर सबकी रक्षा करते हैं तब कृष्ण की झलक पाती हैं। इस किंवदंती के कारण लोक में मान्यता है कि मीरा घूंघट (लोक–लाज) नहीं करती और गिरधारी को पूजती हैं। अवतारी कृष्ण को पूजने वाली मीरा स्वयं अवतार बन गईं जो लोक प्रदत्त प्रेम का प्रतीक है।

कृष्ण भक्ति का प्रारंभ बाल्यकाल से ही हुआ था। इस भाव को पुष्ट करने वाली दो किंवदंतियाँ मिलती हैं। साधु द्वारा कृष्ण की मूर्ति मीरा को दी जाना और बारात को देखकर मीरा का अपनी माँ से पूछ बैठना कि मेरा वर कहाँ है? तब कृष्ण की ओर इशारा कर माँ ने बाल्यकाल से ही मीरा को कृष्ण की पत्नी और भक्तिन बना दया। ये उल्लेख बताते हैं कि मीरा के पितृवंश के वैष्णव संस्कार तथा मीरा की भक्ति ने उसे बाल्य काल से ही प्रेममयी व भक्त बना दया था ना कि पति की मृत्युपरांत वह कृष्ण पूजा में लीन हुई।

लोक ने मीरा को कृष्ण के रंग में पूर्णतः रंग दिया था। मीरा भी कृष्ण की ही तरह एक दिन में एक कला में पारंगत हो जाती थीं। यह किंवदंती उनकी तीव्र बुद्धि का परिचय भी देती है। कहते हैं कि एक बहुत नामी संत के भजन को मीरा ने उसी ताल, राग में तत्काल गा दिया था। मीरा के गायन की श्रेष्ठता व महत्ता इस किंवदंती से भली–भाँति प्रकट होती है।

विवाद है कि, रैदास मीरा के गुरु थे अथवा नहीं। लोक में इस विवाद को खत्म करने वाली किंवदंती भी मिलती हैं जिसका उचित विश्लेषण आवश्यक है। कहा जाता है कि गुरु पूर्णिमा के दिन रैदास किसी कार्यवश मेड़ता आए थे। चूंकि गुरु पूर्णिमा थी अतः गुरु का सा सम्मान–सत्कार किया गया और उपदेश भी सुने जिनका प्रभाव मीरा पर पड़ा था परंतु विधिवत दीक्षा नहीं ली थी।

ऐसी मान्यता है कि मीरा का विवाह कृष्ण से हुआ था। कृष्ण के साथ ही सभी रस्में पूर्ण हुई थीं। वास्तव में यह किंवदंती कितनी प्रामाणिक है। इसकी बजाय इसकी संवेदना पर ध्यान देना चाहिए। यह भारतीय समाज की संवेदना ही है जो द्रौपदी को पांच पति रखने के बावजूद श्रेष्ठ पतिव्रताओं में गिनता है। लोक के नैतिक व अनैतिक मापदण्ड जितने कड़े हैं उतने ही संवेदनशील भी। मीरा के विषय में यह किंवदंती है तो यह इस बात की परिचायक है कि लोक भी मीरा की भक्ति व प्रेम को समझता है। वह समझता है कि मीरा का मानस विवाह कृष्ण से हुआ था और यह भी अर्थ निकलता है कि मीरा कृष्ण की छवि भोजराज में देख लेती हैं। इस किंवदंती की व्याख्या संवेदना के स्तर पर होनी चाहिए ना कि अर्थ अभिधा में ले लेनी चाहिए।

इस क्रम में देवी पूजा से इंकार की किंवदंती भी है जो तत्कालीन चलने वाले वैष्णव व शाक्त मतभेदों को उजागर करती है और जिसे मीरा के साथ जोड़कर बल मिला। मीरा का वंश वैष्णव था और ससुराल शाक्त अतः इस प्रकार की किंवदंती प्रचलित हुई।

मीरा के ससुराल के विषय में कहा जाता है कि भगवान राम के ज्येष्ठ पुत्र ही मेवाड़ वंश के मूल पुरुष हैं। यह सब जनता में वंश की श्रेष्ठता व दैवीय गुणों से परपूर्णता बताने के लए किया जाता था। इसी वंश की बहू मीरा साधु समाज में

ख्याति पाती है और उसकी महिमा को बताने के लए लोक ने अकबर से भेंट भी करवाई। जिसका परिणाम यह हुआ कि राणा परवार मीरा से रुष्ट हो गया। मीरा से भेंट के संदर्भ में मांडू के सुल्तान की भेंट का भी उल्लेख मलता है। वास्तव में यदि इसे अप्रामाणिक भी कह दें तो इस आशय को नहीं नकारा जा सकता क मीरा की ख्याति अपने चरम पर थी। साथ ही साथ अकबर के उदार चरित्र को भी बल मिलता है जो कृष्ण भक्तन, 'काफिर' मीरा से मिलने आता है। वास्तव में यह किंवदंती अकबर व मीरा दोनों की लोक प्रशस्ति है।

लोक बताता है कि मीरा केवल भक्तमती ही नहीं बल्कि विदूषी भी थीं। महाराणा सांगा के नाम पत्र आया जसमें केवल 'सा' लिखा था। इस का अर्थ स्वयं राणा तथा राणा के विद्वान भी नहीं पढ़ पाये तब विदूषी मीरा ने तत्काल बताया कि जिस राजा ने यह पत्र लिखा है वह दर्शन की लाल'सा' रखता है। जससे महाराणा प्रसन्न हुए और मीरा के प्रति श्रद्धा रखने लगे। पत्र की किंवदंती मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह के विषय में भी मिलती है कि अंग्रेजों ने महाराणा के पास सफेद, कोरा कागज भेजा। जिसका प्रत्युत्तर कागज का एक कोना फाड़कर राणा ने भेज दिया। सामंतों द्वारा पूछने पर उन्होंने बताया कि सफेद कागज का आशय संपूर्ण भारत पर अंग्रेजों के अधकार का था। इस पर राणा ने अपने मेवाड़ के कोने को फाड़कर अपने पास रख लिया।[3] मेवाड़ में विद्वता के विषय में इस प्रकार की किंवदंतियाँ आम हैं।

महाराणा साँगा व भोजराज की मृत्यु के पश्चात मीरा मेवाड़ महल में नितांत अकेली पड़ गई। राणा सांगा की राठौड़ पत्नी व मीरा की सखी ही उसके साथ थी। लोक चर्चा है कि ऐसे में विक्रमादित्य ने मीरा पर कुदृष्ट डाली थी। मीरा के प्रतिरोध ने उसे क्रोधित कर दिया। मीर का भक्त के रूप में साधु संगत में बैठने व नाचने से विक्रमादित्य को जरिया मिल गया। मीरा के कष्टों के विषय में लोक ने अपनी संवेदना खुल कर प्रकट की है। इन कष्टों के विषय में अनेक किंवदंतियाँ मिलती हैं। राणा ने ऊदाबाई से मिलकर मीरा की कृष्ण मूर्ति छिपा ली परंतु मीरा के भजन गाने के पश्चात् वह पुनः प्रकट हो जाती है। मीराबाई को काल कोठरी में सांप, बिच्छु आदि के साथ रखा था। चंपा–चमेली नामक दो दासियों को मीरा को

कष्ट देने के लए रखा गया था। बीजावर्गी मंत्री की सहायता से ज़हर भी दया गया। लोक की मान्यता के अनुसार बीजावर्गी महाजनों को आज तक मीरा का शाप लगा हुआ है कि उनके व्यापार व वंश में उन्नत नहीं होगी। राजवैद्य की मृत्यु हो जाने पर मीरा ने राग मल्हार छेड़ा जिससे वह पुनः जीवत हो गया। इसी के फलस्वरूप ननद ऊदाबाई मीरा के प्रति वैर–भाव भूलकर श्रद्धा रखने लगी। सभी प्रयासों में विफल राणा ने अंत में दो काले नाग मीरा को डसवाने के लिए भेज दिए। कहते हैं कि वे रत्नहार बन गए परंतु आशय यह है कि वे नाग या कोई भी धमकी मीरा को विचलत न कर सकी। मीरा की हत्या के लिए राणा ने उसे भूखे बाघ के समक्ष खड़ा कर दया, जहरीली कीलों वाले बिस्तर पर धोखे से सुलवाया परंतु विफल रहा। भूत महल में भी बंद करने की किंवदंतियाँ हैं।

लोक को मेवाड़ी राणा व चित्तौड़ किले के भीतर की प्रामाणिक जानकारी तो संभवतः नहीं होगी परंतु मीरा को दिए गए कष्टों के विषय में लोक ने नाना कल्पनाएँ की तथा अपनी संवेदना को मीरा के साथ जोड़ लिया।

किंवदंती यह भी है कि जब राणा, मीरा को मारने स्वयं आया तब कृष्ण नरसिंह रूप में प्रकट हो गए। इससे डर कर राणा भाग गया परंतु उसने फिर से मीरा को मारने के लए प्रयत्न किए। राणा ने तलवार उठायी और मीरा हजारों मीराओं में बदल गई नरसिंह रूप की यह किंवदंती मीरा को प्रह्लाद की किंवदंती से जोड़ती है। ईश्वर ने मीरा की रक्षा पग–पग पर की। जब मीरा चित्तौड़ छोड़कर मेड़ता चली गई तब भी चतुर्भुज नाथ जी ने मालदेव के मेड़ता आक्रमण पर मेड़ता की रक्षा की थी। अपने वृंदावन प्रवास के समय मीरा और विषयी साधु की किंवदंती भी मिलती है। साधु के द्वारा कृष्ण का नाम लेकर, संबंध बनाने की इच्छा प्रकट की गई परंतु मीरा खुले चौक में बिस्तर लगवा कर कहती हैं कि ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ ईश्वर न हों अतः आप अपनी इच्छा यहीं पूर्ण कीजिए। ऐसा सुनकर साधु सच्चे अर्थों में साधु बन जाता है। यह किंवदंती है कि मीरा रणछोड़जी की मूर्ति में समा जाती है। यह बात ठीक चैतन्य महाप्रभु से जुड़ती हैं जो जगन्नाथ जी की मूर्ति में समा गए थे। कबीर भी फूलों में बदल गए थे। वास्तव में महान आत्माओं के विषय में लोक में यह कभी नहीं कहा जाता है कि वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

अवतारवाद में भारतीय जनमानस की गहरी आस्था है। एक अवतार के बाद तत्काल दूसरा अवतार प्रारंभ हो जाता है। जब परिता मुक्ता यह कहती है कि मीरा पश्चिम भारत की स्त्रियों में विलीन हो गयीं तब यही भावना पुष्ट होती है। मीरा के अस्तित्व के विलीन हो जाने को पुरूषोत्तम अग्रवाल की इन पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है जो मीरा की लालसा, वेदना, संघर्ष को मार्मिक ढंग से प्रकट करती हैं।

"पगतलों में अपनी लालसा लहरों से गुदगुदी करके
सताओ मत नर्दयी।
पल–पल खसकती हैं पाँव तले से धरती
ड़र लगता है ना...... नाथ जी।
पगतल को गुदगुदा कर लौटती हर लहर
रेत को ही नहीं, थोड़ी, थोड़ी कर मुझे भी ले जाती है,
अपने साथ
कितना मीठा है डर.... कितना मादक धीरे–धीरे रीतना....
अब न लौटूंगी कान्हा.... पूरी की पूरी रीते बिना।" 4

मेवाड़ की राजकीय उपेक्षिता आज चित्तौड़ किले की सात विशेषताओं में स्थान पाती हैं। सुंदरता में रानी पद्मनी, शौर्य में राणा सांगा जिन्हें 80 घाव लगे फिर भी वे लड़ने को तत्पर थे। विद्वता में राणा कुंभा का नाम प्रमुख है। स्वामी भक्ति में पन्नाधाय तो विश्वासघात में बनवारी का नाम आता है। मेवाड़ी भीष्म कुंवर चूंडा हुए जो अपने पिता राणा लाख व उनकी नई पत्नी जो जोधपुर की राजकुमारी थी, के पुत्र के लिए स्वयं राजसिंहासन से हट गए। और अंत में भक्ति के क्षेत्र में रानी मीरा का नाम आता है जो चित्तौड़ किले को सदा के लए अमर कर गई। पंडित परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि, "हाँ, इस बात की सूचना मुझे अपनी उदयपुर की यात्रा के ही समय मिली थी कि वहाँ मीरा के प्रति आदर बुद्धि कम है। मुझसे इसकी चर्चा चित्तौड़ दुर्ग के रहने वाले लोगों तक ने की थी।" 5

आचार्य जी का यह कथन लोक से नहीं जुड़ा अन्यथा ऐसा वे कदापि नहीं कहते। ऐसा सुना जाता है कि मेवाड़ में लगभग 50 वर्ष पहले राधा अष्टमी के दिन मीरा तथा गिरधर के चित्र की पूजा होती थी। 6

ये किंवदंतियाँ मीरा के जीवन का प्रामाणिक जीवन वृत्त तो नहीं अपितु एक छवि अवश्य प्रदान करती है। इन किंवदंतियों का प्रयोग विश्लेष्णात्मक दृष्टि से किया जाए तो ये प्रमाणिक स्रोतों सी महत्वपूर्ण हो सकती हैं।

इन किंवदंतियों से इतर् मीरा की लोकछवि को जानने के लिए लोकगीत भी महत्वपूर्ण हैं। राजस्थान लोकगीतों की दृष्टि से समृद्ध प्रदेश हैं। लोकगीत बिना प्रशिक्षण अथवा अभ्यास के सहज कण्ठ से निकली अभिव्यक्ति है जिसमें जनसाधारण का उल्लास, प्रेम करुणा दुख की व्यंजना प्रतिबिम्बत होती है। गृहणियाँ तो हर तीज–त्यौहार, संस्कार, पाहुना आने पर, चक्की पीसने पर पनघट से पानी लाते हुए लोकगीत गाती हैं। लोकगीतों की छाप, भाव संवेदना हूबहू मीरा के पदों में दिखती है। यही कारण है कि मीरा लोक में प्रसिद्ध हुई। लोक कण्ठ में व्यापी और अमर हुई। मीरा कृष्ण को पाहुना मानकर भोजन करवाती है। वे कहती हैं कि

थे जीम्या गिरधर लाल
मीराँ दासी अरज कर्याँ छौ, म्हारो लाल दयाल।
छाप्पन भोग छतीसाँ वंजण, पावाँ जण प्रतपाल।
राजभोग आरोग्याँ गरधर, सणमुख राखाँ ाल।
मीराँ दासी, सरणा ज्याशी, कीज्या वेग निहाल।। (पद–47, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

होली, गणगौर जैसे लोक पर्वो को वे याद करती हैं और प्रिय विरह में वे होली का आनंद भी नहीं उठाती। वे गा उठती हैं कि–

"कुण संग खेलूं होली, पिया तजि गये हैं अकेली" (पद–79, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

या

"होली पिया बिणा लागां री खारी।

सूनो गांव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।।" (पद–77, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

पति विदेश चला गया है और आने की घड़ी का पता नहीं। ऐसे में 'म्हारो ओलगिया घर आज्यो जीं' (पद–118) की टेर लगा कर अपनी दशा के विषय में कहती हैं कि 'आप तो जाय छाये, जिवड़ो धरत ण धीर। (पद–121)

मीरा को कुछ भी अच्छा नहीं लगता और कोयल की वाणी भी चुभती है। बिजली की चमक डराती है। मीरा ने स्त्री की कोमल भावनाओं को लोकगीतों की तर्ज पर गाया है। वे कहती हैं कि –

"मतवारो बदिर आयो रे, हरि को सनेसो कछु न लाये रे।
दादुर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाये रे।
इक कारी अँधियारी बिजली चमकै, विरहणी अति डरपयो रे।"(पद–80, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

पपीहा की पीऊ–पीऊ विरहणी मीरा को चुभ रही है तो दूसरी ओर उसकी चोंच साने की बनवा देने का वादा करती है, जो पति आज घर आ जायें। कौआ, शकुन का प्रतीक माना जाता है। कौआ देखकर मनौतयाँ भी मांगी जाती हैं। यदि घर के आस पास बैठकर कौआ आवाज करे तो माना जाता है कि, पाहुना आने वाला है। मीरा इस लोक भावना को श्रेष्ठता से उभारती हैं –

"पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुण पावेली विरहणी रे, थारो राखैली पाँख मरोड़।
चांच कटाऊँ पपइया रे, ऊपर कालर लूण।
पिव मेरा मैं पिव की रे, तू पिव कहैंसूँ कूँण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेल्या आज।
चाँच मढ़ाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरे सरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कउवा तू ले जाई।
प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थांरी विरहण धान न खाई।
मीराँ दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत विहाई
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी, तुम बिन रहयोई न जाई।" (पद–83, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

वे पंडित से पिया के आने का मुहूर्त पूछती हैं। जब पिया नहीं आते तो पत्नी की तरह क्रोधित हो जाती हैं। उलाहना देती हैं और ईर्ष्या से भर कर गाती है।

"स्या म्हाँसूँ ऐंडो डोले हो, औरन सूँ खेलै धमार।
म्हाँसूँ मुखहिं ण बोलै हो स्याम म्हाँसूँ।
म्हाँरी गलियाँ णां फरे, वाँके आँगण डोले हो।
म्हारो अँचरा णा छुवै, वाँ की घूँघट खोले हो।
मीराँ के प्रभु साँवरो, रंग रसिया डोलो है।"(पद–180, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

सावन की ऋतु आते ही प्रिया की विरहाग्नि तीव्र हो जाती है। प्रिय के आगमन की सूचना उसमें हर्ष का संचार कर देती है। मीरा प्रिय के आगमन पर उत्साह से भर उठती है। अपनी सखी से वे इस बात को बताती हैं –

"सुण्यारी म्हाँरे हरि आवांगा आज।
म्हैलां चढ़ चढ़ जोवां सजणी कब आवां महाराज।
दादुर मोर पपीआ बोल्याँ कोइल मधुरां साज।
उमाग्याँ इंद्र जहूँ दस बरसां दामण छोड़या लाज।"(पद–142, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

लोक निधि के रूप में मीरा कबीर से भी जुड़ती है। मीरा व कबीर दोनों ही लोक के अधिक निकट थे। लोक ने इन्हें समझा व सराहा। कबीर व मीरा की संवेदना भी लगभग समान है। मीरा तो स्त्री है ही अतः प्रेम व लोक संस्कृति को गाती हैं और कबीर की महत्ता स्त्री हो जाने में है। उल्लेखनीय बात यह है कि कबीर व मीरा दोनों ही 'विद्रोही' हैं परंतु संवेदना के स्तर पर भावुक, समर्पित व प्रेममय हैं। जब मीरा कहती हैं कि –

"साजण म्हारे घर आया हो।
जुगां जुगां री जोवतां, विरहण पिव पाया हो।"(पद–141, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

तो कबीर की संवेदना, जो प्रिय के आगमन पर गा उठती है कि

"दुलहिनी गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार।"(कबीरः साखी और सबद)

संवेदना के निकट हैं। प्रिय के रंग में रंग जाने पर कबीर लोक का भी निषेध कर सकते हैं। उन्हें अपने प्रिय का प्रेम अधिक प्रिय है। लोगों द्वारा निंदा करने पर वे उस निंदा को महत्व नहीं देते। प्रेम के पथ पर चलते हुए विद्रोह कर उठते हैं। वे कहते हैं कि –

"भलै नींदौ भले नींदौ भलै नींदौ लोग।
तन मन राम पयारै जोग।
मैं बोरी मेरे राम भरतार। ता कारन रच करौं स्यंगार।"(कबीरः साखी और सबद)

मीरा भी इसी प्रेम सूत्र को थाम कर कबीर की ही भांति विद्रोह कर उठती हैं। मीरा का संपूर्ण काव्य ही प्रेम व प्रेम जनित विद्रोह है। मीरा गाती हैं कि –

"कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो, गुण गोविंद का गास्याँ।
जण मारग म्हाँरा साध पधारै, उठा मारग म्हे जास्याँ।।"(पद–25, प. चतुर्वेदी द्वारा संपादित मीरा पदावली)

वास्तव में, लोक के निकट रहने वाला कवि संवेदनहीन, प्रेम तत्व विहीन केवल विद्रोही नहीं हो सकता है क्याकि लोक अकृत्रिम व्यवहार को पसंद करता है। स्वाभाविकता, सरलता इसका स्थायी गुण है। लोक में निराशा, बेचैनी, दीनता, दुख नहीं है बल्कि आशावाद, जीवन–स्फूर्ति व सहजता है अतः लोक के निकट रहनेवाले कवि प्रेममय तथा सरल होने के कारण ही विद्रोही भी हैं। कुटिलता की उठा–पटक से बहुत दूर, कृत्रिमता से दूरी दिखती है। लोक की संवेदना को मीराबाई व कबीरदास ने उचित प्रकार से संभाला। अब लोक इनकी संवेदना को पीढ़ी दर पीढ़ी संभाल रहा है।

लोक में मीरा की छवि को जानने का सशक्त माध्यम हरिजस हैं। ये हरिजस रात्रि जागरणों में, भजनों के रूप में गाए जाते हैं। मूलतः हरियश शब्द हरिजस में बदल गया है। हरि के यश को गाने के लिए मीरा, रैदास, दादू, चंद्रसखी आदि के भजनों व लोक में इनके नाम से प्रचलित पदों को गाया जाता हैं। मीरा के भजन हरियश के लिए प्रमुखतः गाए जाते हैं क्योंकि मीरा के पद भजन का पर्याय ही बन चुके हैं। अब वे पद चाहे प्रेम के हों या विद्रोह के हों। लोक ने मीरा के कष्टों को भी वाणी दी है और मीरा को अपनी संवेदना में जीवित रखा है।

मीरा के पद शुरू से ही मौखक परंपरा में रहे हैं जिसका उल्लेख नागरीदास ने भी किया था। वही मौखिक परंपरा हरिजसों में दिखती है। ये हरिजस मीरा के मूल पदों से मिलते हैं या नहीं यह कहना अनुचित है क्योंकि *जल में कुंभ, कुंभ में जल* सी स्थिति है। लिखत पद भी मौखिक परंपरा के ही अंग हैं। इनमें निरंतर परिवर्तन होते रहे परंतु भाव साम्यता व मीरा की संवेदना एक ही रही। मीरा की भाव पुस्तका को पढ़ने के लिए ये हरजस व्याकरण की भूमिका निभाते हैं।

इन हरिजसों का संकलन व संपादन डॉ. जयपाल सिंह राठौड़ ने कुशलता से किया है। इन हरिजसों के माध्यम से मीरा की लोकछवि तत्काल प्रकट हो जाती है। लोक व मीरा के भाव व भाषिक आदान–प्रदान को, ये हरिजस प्रकट करते हैं।

लोक में गणेश वंदना सबसे पहले की जाती है अतः हरिजस परंपरा में भी गणेश वंदना सर्वप्रथ की जाती है। इसके बाद ही शेष भजनों को गाया जाता है। गुरु की वंदना करते हुए मीरा हर्षित होती हैं। वे कहती हैं कि –

"सतगुरु मिल्या मेरी गली में,
आज सखी मेरे रंग रली है।"

लोक में संतों की बहुत महिमा है। सभी जाति, वर्ग के लोग इन्हें सम्मान देते हैं। संतों की महिमा लोक ने मीरा के मुख से भी कहलवाई है कि –

"भाग भला ज्याँ घर संत पधारै
सायब बसता में कछु अंतर नाहीं
सायब रा घर भगतां रै मांही

भाग भला ज्याँ घर संत पधारै।"

यहाँ 'सायब' शब्द साहब का प्रतीक है जो कबीर पंथ से जुड़ता है, तात्पर्य है कि ईश्वर व संतों में अंतर नहीं है। मीरा भक्तों को पिता जानकर उर से लगाती थीं। राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंश के अनुवर्ती ओरछा निवासी हित हरिराम कृत 'व्यासवाणी' में लिखा है कि 'मीराबाई बिनु कौन भक्तनि पिता जानि उर लावै।" १ इसी भावना को लोक इस प्रकार से वाणी देता है।

"संतां–संतां मतो वचार्यौ चालौ पुष्कर चालां
बीच से आसी मीरां को घर, आयोड़ा लेस्याँ बस्राम
बाई के आया जी मीरां के आया जी हरजन प्यारा पांवणा
मीरां सूती म्हैल में जी सुणी संता की उपाज
टग–टग म्हैला उतारया जी संता आगै सीस नंवाय
को तो संतां करूं रसोई, को तो तुरत मंगाद्यूं
संत जीमै अंगाणै दूदां की बरसेलो मेह।
बाई कै आयाजी मीरां के आया जी हरजन प्यारा पांवला।

लोक में मीरा साधारण गृहस्थिन की भांति भी व्यवहार करती हैं। चौक, आँगन अपने हाथों से पूरती हैं। शकुन भी मनाती हैं और संतों का सत्कार भी करती हैं। इन हरिजसों के माध्यम से मीरा को देखना अद्‌भुत है। मीरा ही नहीं प्रत्येक भारतीय स्त्री की झलक इनमें मिल जाती है। मीरा के नारीत्व को इनमें अभिव्यक्ति मिली है। मीरा अपनी माँ को स्वप्न में कृष्ण से हुए विवाह के विषय में बताती है–

"मैया मेरी लाल सपने में परणी गोपाल
सपनो जीव रो जंजाल
हाड़ो से डोरे पग रो कंकण
तन रो तेल चढ़ावां
मैया मेरी लाल सपने में परणी गोपाल।"

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'मीराबाई की पदावली' में यह पद इस प्रकार मिलता है।

"माई म्हाँणे सुपणा मां परण्या दीनानाथ।
छप्पन कोटां जणां पधार्‌याँ दूल्हो सरी ब्रजनाथ।" पद–27

यह पद मौखिक परंपरा व लिखित परंपरा के सूत्रों को बताता है कि लिखित पद भी वास्तव में थोड़े से अंतर के साथ मौखिक परंपरा में से चयन है। मौखिक परंपरा में निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। क्योंकि वहाँ भावना प्रधान होती है, प्रामाणिकता नहीं।

मीरा विवाहिता, गृहस्थिन हैं। वे चौक बुहारती हैं और प्रिय की राह भी तकती हैं। मीरा का सरल रूप व भक्ति लोक से तत्काल जुड़ जाती है और हरिजस में वाणी पाती है।

"झरमटया पानां री सांवरा म्हारै घर आमली
मनमोहन प्यारा आज्यौ गरीबणी रै देस
दयालु सांवरा आज्यौ बडभागवणी रै देस
ऊठ सवेरै सांवरा बगड बुहारुली।
जोंवू थारी बाट।"

मीरा की भक्ति के विषय में भी लिखा गया है। मीरा की भक्ति समन्वयशील थी। वे बाल कृष्ण को भी पूजती हैं। 'बाई' मीरा ने गरिधर मिल्या, कर बालूड़े रो भेस। या वे कहते हैं कि 'बालूडो म्हनै जोगण कर गयो।' यहाँ 'बालूडो' बाल कृष्ण का प्रतीक हैं। मीरा कृष्ण से अरज करती हैं कि उन्हें भी तार दिया जाए। उद्धार कर दिया जाए जैसे शेष भक्तों का किया है। वे कहती हैं कि –

रंका तार्‌या प्रभू बंका तार्‌या
प्रभू तार लयौ कालू कीर
सुवा रै पढाती गणिका तारी
होली रै जलतौ पेलाद उबारयौ
ठार दियो खंभ सीर
डूबतड़ो गजराज उद्धार्‌यौ

पार कियो पें ले तीर
द्रौपदी री हरि मेरे लजिया राखी
हर ले बधायो चीर।

मीरा का प्रेम इतना सहिष्णु है कि वे कृष्ण के साथ राधा व रुकमणि को भी स्वीकार लेती हैं। उनके लिए भक्ति मुख्य है। मीरा के माध्यम से लोक ने कृष्ण के अवतार व लीलाओं का गान भी किया है –

"मीरा हरि दासी आवै थारै फूलांरी सेज बिछावै
सो ज्यावो अंतरजामी हरि रा नैणां मांही नींद धुरांणी
राधा रुकमण आवै थारै पंखै बाव दुलावै
सबरी भीलणी आवै मीठा–मीठा बोरड़ा लावै
सो ज्यावो अंतरजामी हरि रा नैणां मांही नींद धुरांणी।"

मीरा की संवेदना को लोक ने समझा व गाया हैं। मीरा का दुख यह है कि उसे कोई नहीं समझता बस ईश्वर का सहारा है। राणा को भी यह उलाहना देती हैं। 'कोनी जांणी रे राणा जी थे तो म्हारा मन की, म्हारा मन की रे, सांधा रै संग की।'

विरह की तीव्रता, असहायता के क्षणों में मीरा कह उठती हैं कि –

"काढ़ कलेजो भंवरी धंरा रै उधव
काग लेर उड़ जाय
चढ़ आकासां जाय पियाजी रै आंगणा बिच खाय।"

काग यदि मीरा का कलेजा पिया के आंगन में खायेगा तो इसी बहाने उन्हें मीरा की याद तो आयगी। प्रेम की इतनी तीव्र संवेदना को लोक ने भली भांति समझा। मीरा का प्रेम इतना तीव्र था कि वे विद्रोही भी हो जाती हैं। मीरा के प्रेम व विद्रोह को लोक ने श्रेष्ठता से प्रकट किया है। संवाद शैली में लिखे गए अनेक हरिजसों में मीरा विद्रोह प्रकट करती हैं। ये संवाद राणा–मीरा, मीरा–माता आदि के रूप में हैं। विवाह का विरोध करते हुए मीरा को दिखाया गया है।

राता तो पीला तंबू मीरां बाई तांणया आयी है थांरोड़ी जान

झोली में घाल्या दीनानाथ ने जाय बिराज्या मन्दर मांय

....

पैं ले तो फेरे दादोसा आवया खोलो जी सजड़ कवाड़
धोलां की लज्याँ मीरां बाई राखज्यौ जी बाई आय बराजो फेरा मांय

....

सातवें तो फेरे भुवाजी सा आवीया खोले नी बाई सजड़ कंवाड़
कुल में कंवारी तूं रही मीरा कुल कै लगाय दीन्हौ दाग
जीवणूं हथलेवौ दीनानाथ को रै जोशी डावोड़ो हथलेवौ जुड़ाय
त्यारूँ ली पीवर सासरौ भुवासा त्याँरूँ ली मायर बाप
त्यारूँ दूदाजी को मेडतो राणा की मेवाड़
राठौड़ी बाई सा खोलो नीं किवाड़।"

यह हरिजस मीरा की लोक निंदा, भक्ति, विद्रोह–भावना तथा प्रेम को प्रदर्शित करता है। सातों फेरों पर भी मीरा अपनी भक्ति पर अडिग रही। कुल की नाक कटवाने के विषय में मीरा जवाब देती हैं कि मैं पीहर व सासरा दोनों का ही उद्धार कर लूँगी। यह भक्ति जनित विश्वास है और वास्तव में लोक झूम–झूम कर जब यह हरिजस गाता है तब मीरा अपना ही नहीं, पीहर व सासरा दोनों का मान बढ़ा रही होती है। इसी क्रम में राणा–मीरा संवाद भी चलता है। इनमें राणा मीरा को नाना प्रकार से समझाता है। परंतु मीरा नहीं मानती। जब राणा मीरा को मारने के लिए कटार निकालता है तो मीरा सैंकड़ों की संख्या में बंट जाती है। 'मीरा हो गयी सौ और पचास कुंण सी मीरा को राणा जी मारोगे हो राम।' मीरा को लोक ने चमत्कारी भी बना दिया है। किंवदंतियों का भी प्रभाव दिखाता है। मीरा के कष्ट व विद्रोह को इस हरिजस से प्रकट किया गया है। यह लोक की वाणी है जो विद्रोह व क्रोध को भी गाती है।

"म्हारौ मन लाग्यौ हर का नांव से
न्हार का पंजरा राणांजी भेजया दयौ मीरां के हाा
खोल कंवाड़ी देखया बण गया सालगराम
म्हारौ मन लाग्यौ हर का नांव से
मीरां गढ़ सूं उतरी ऊँटां कसयो भार

डावो छाड्यौ मेड़तो सीधी पुष्कर जाय
म्हारौ मन लाग्यौ हर का नांव से
साध माय'र बाप साध मलावे मोट राम सूं।"

मीरा व सीता दोनो ही स्त्री के लिए बनाए गए नियमों का नकार करती हैं। मिथिला में सीता के प्रेम जनित क्रोध को भी लोक ने उभारा है। वास्तव में प्रेम में जितनी क्षमता संवेदना को महसूसने की है उतनी ही तीव्रता से क्रोध को प्रकट करने की भी है। सीता को राम से अनन्य प्रेम है किंतु जब राम कर्तव्य व मर्यादा के लिए गर्भवती सीता को वनवास देते हैं तब सीता क्रोध से भर उठती है और लोक उनके क्रोध को वाणी देते हुए कहता है कि– "गुरु जी राम निरमोहिया के मुँहवा जियत नाहीं देखबि हो।" और अंततः सीता धरती में समा जाती है। उनको पकड़ने के प्रयास में राम के हाथों में सीता के बाल आ जाते हैं। वे बाल भी कुस की संथरिया हो जाते हैं।

वास्तव में लोक सही–गलत का फैसला भी तत्काल कर देता है। वह खालिस पुरुषवादी नजर से नहीं सोचता है और ना ही स्त्री विमर्श के नजरये से। उसकी अपनी समझ है जससे वह न्याय कर देता है। इतने विद्रोह कष्ट व संघर्ष के बाद ही लोक मीरा को द्वारिका की रानी अर्थात् कृष्ण की पत्नी स्वीकारता है और मीरा की द्वारिका यात्रा का वर्णन भी करता है। इसमें वे हर्ष के साथ ससुराल जाने की तैयार करती हैं।

वास्तव में, लोक ने मीरा को अपनी कसौटी पर कसा, परखा। फिर उसकी संवेदना को पहचान कर अपनी संवेदना से जोड़ लिया। मीरा के विद्रोह की निंदा भी की जाती है –

"बाई चकचक करैये सारो सेर
लोग थारी निंदा करै
माता लोग भोलौ छौ समझै नाहीं
म्हारी सेवा में सालगराम बैरागण हर का नांव मं।

'चक चक' शब्द कानाफूसी, लोकनिंदा का भाव है। मीरा इस भाव को पार करने का सहारा उठाती हैं। मीरा की संवेदना को समझ कर लोक मीरा को न केवल अपने से जोड़ लेता है बल्कि आत्मसात भी कर लेता है। वह मीरा के विद्रोह को भी समझता है और संवेदना को भी ....

"आगी आयी साधं री जमात
आयी आयी जोग्याँ री जमात
ज्यां मैं मीराबाई आवया जी भगवान
मायड़ तो नरखै धीवड़ रा रूप नै हर राम
अकेर मीराबाई आंगणयों पधार
थांनै जीमाद्यूं चूंटयो चूरमूं जी भगवान
.....
अेकर मीराबाई आंगणिये पधार
थारा गुवादयूं च्यार बधावणा
बधावा थारा बेटां का गवाय, बेटयाँ का गवाय
म्हारै लिख दीन्ही गीता बांचणी ओ हर राम।"

यहाँ 'अेकर मीराबाई आंगणिये पधार' में मीरा को एक बार बुलाने का न्यौता दिया गया है। जिसके साथ मीरा का सम्मान करने का भी उपक्रम है। देखने वाली बात है कि मीरा इन सम्मानों से इंकार कर देती हैं। वास्तव में मध्यकालीन संत किसी सम्मान के प्रतीक्षक नहीं थे। वे अपना राग गाते थे। लोक ने उन्हें सम्मान दिया, यह लोक की अपनी संवेदनाशीलता है। अंत में, मीरा गीता बांचने का बताती हैं। जो गीता के लोक स्वरूप को बताता है। गीता में कर्म की प्रधानता बताई गई है। धर्म ही श्रेष्ठ है परंतु ध्यान रहे कि गीता में उल्लेखित धर्म की दृष्टि संकुचित नहीं है। स्वयं कृष्ण अर्जुन को धर्म का पाठ पढ़ा कर्त्तव्य की ओर प्रेरित करते हैं। इसी क्रम में भौतक मायाजाल से मुक्त कर नैतिक–अनैतिक के मापदण्डों को समझाते हैं। लोक–मीरा–गीता का सामंजस्य इन हरिजसों में दिखता है। एक ओर लोक जीवन का राग गाता है, अलमस्त है तो मृत्यु की संवेदना भी समझता है। वह कर्त्तव्य की पालना में नैतिक–अनैतिक मानदण्डों को संवेदना से परखता है। गीता

की भावना अपने में समा लेने वाली मीरा भी धर्म के रास्ते पर है। अतः लोक उन्हें पूरा सम्मान देता है।

मीरा केवल अपने क्षेत्र तक सीमित नहीं रहीं। साधु–संतों को पिता जान उर से लगाने वाली मीरा के पदों को, उसी साधु समाज ने प्रचारित किया। कई–कई राग–रागिनियों में गाया जिसका परिणाम यह हुआ कि मीरा केवल राजस्थान में ही नहीं बल्कि शेष भारत में भी सम्मानित हुईं। ये मीरा छाप के पद भाव साम्यता एक समान मिलती हैं। पंजाब में मीरा का नम्न पद मिलता है –

"सांवरे दो भालन भाये, सानू प्रेम दी कटारयाँ
सखी पूछो दोऊ चारे, व्याकुल क्यौं मैया नारे
....
मीराबाई प्रेम पाया, गरधर लाल ध्याया
तू तो मेरो प्रभुजी प्यारा, दासी हो तहरयाँ।"

मीरा के प्रेमतत्व को ही प्रधानता देने वाला पद बिहार में भी मिलता है। बस भाषिक अंतर है –

"कहाँ गइले गोपी, कहाँ गइले पाल
कहाँ गइले मुरली बजावन हार
मीरां के प्रभु गिरधर लाल
तुम्हारे दरस बिन भइल बेहाल।।"

मीरा के भजन बंगाल में बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ तक कि कीर्तन, गान इत्यादि प्रसंगों में आए 'भजन' का तात्पर्य ही मीरा के भजन से है। मीरा के प्रेम तत्व को यहाँ भी प्रधानता मिली है किंतु कुछ विद्रोही तेवर के साथ।

"नित नहान से हरि मिले तो जल जंतु होई।
फल फूल खाके हरि मिले तो बादुर बंदराई।
तिरन भखन से हरि मिले तो बहुत भृग अंजा
स्त्री छोड़ के हरि मिले तो बहुत वत्स–बाला।
मीरा कहै बिना प्रेम के नहीं मिले नंदलाला।"

जिस प्रकार कबीर छाप का पद राजस्थान में होली के अवसर पर गाया जाता है कि –

"औ संसार कागज री पुड़िया
छांट पड्या गाल ज्यावैलौ
आ रे ली जिंदगाणी।"10

ठीक वैसे ही मीरा के पद भी भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में नए–नए भाव संवेदना व तेवर के साथ गाए जाते हैं परंतु इन सभी से निश्चित रूप से यह तो कहा ही जा सकता है कि, लोक ने मीरा को समझा, संवेदना को पकड़ा और अपनी ही वाणी में अभिव्यक्ति दी। यह लोक प्रदत्त प्रेम ही है जो मध्यकालीन संत आज भी महत्वपूर्ण हैं और गाए जाते हैं। वास्तव में, प्रक्रिया आदान–प्रदान की सी है परंतु आदान–प्रदान प्रेम तत्व का है। मध्यकालीन संतों ने लोक को प्रेम किया अब लोक उनकी वाणी से प्रेम कर रहा है और संरक्षण भी।

लोक के साथ–साथ इन मध्यकालीन संतों का महत्व बाजार ने भी समझा है। यदि फिल्म इतिहास की बात करें तो मीरा पर बनने वाली महत्वपूर्ण फिल्म 'मीरा' (1947) इसमें सुप्रसिद्ध गायिका सुब्बुलक्ष्मी ने मीरा को जिया था। इसमें सुब्बुलक्ष्मी ने मीरा के भजनों को स्वयं गाया था। मीरा का चरित्र बहुत कुछ अमर चित्र कथा की मीरा से मिलता जुलता है। मीरा एक भारतीय स्त्री के प्रतीक के रूप में उभरकर आई थीं।

इसी क्रम में गुलजार द्वारा निर्देशित 'मीरा' (1979) भी महत्वपूर्ण है। इसमें हेमामालनी द्वारा मीरा की भूमिका निभाई गयी थी। इस फिल्म में मीरा पर गुरु रैदास का प्रभाव दिखाया है। अपनी ईश्वर व गुरु भक्ति के कारण मीरा, राजवंश से विरोध भी करती हैं।

वास्तव में मीरा अब स्त्री मात्र का प्रतीक बन गई हैं। वे स्त्री की संवेदना भी हैं तो विद्रोह भी। फिल्मों में तो मीरा नाम को मीरा छाप के पदों की तरह प्रयोग किया गया है। भाव साम्यता है पर–प्रत्यक्षतः मीरा की जीवनी नहीं होती। मीरा की विद्रोही छवि को प्रतीक बनाकर नागेश कुकूनूर द्वारा निर्देशित फिल्म 'डोर' आती

है। यह प्रत्यक्षतः मीरा आधारित फिल्म नहीं है बल्कि मीरा प्रतीक रूप में आई हैं। नायिका का नाम भी मीरा रखा गया जो इस भाव साम्य को तीव्र करता है। कम उम्र में विधवा हुई नायिका अपना जीवन जीना चाहती है, वह मंदिर भी जाती है तो अपनी आजादी के लिए। वह ससुराल पक्ष को खुश रखने के लिए दिन–रात पति के नाम का रोना नहीं रोना चाहती हैं। नायिका की गुरु के रूप में उसकी सहेली दिखती हैं जो उसे राह दिखाती हैं। सबसे अंत में, नायिका अपने ससुराल वालों का कर्जा उतारने के लिए एक धनाढ्य व्यक्ति से संबंध नहीं बनाती बल्कि उस घर को ही छोड़ देती है। यह विद्रोह उस जड़ व्यवस्था के प्रति विद्रोह था जो पति के मरने के साथ विधवा के जीवन को भी अंत मान लेता है। मीरा यहाँ प्रतीक रूप में दिखती हैं। यह मीरा का महत्व है कि जब भी 'विद्रोहणी' व 'प्रेममयी' स्त्री का चित्रण, किया जाएगा, मीरा की ही छवि उभरेगी।

फिल्मों के साथ–साथ बाल–साहित्य पर भी नजर डालनी चाहिए। संपूर्ण साहित्य में बाल–साहित्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए क्योंकि यह साहित्य बाल मन में बीज डालने का काम करता है। बाल–साहित्य के अंतर्गत अनेक चित्रकथाएँ प्रकाशित हुई हैं जो महान व्यक्तियों के बारे में ज्ञान देती हैं। मीराबाई से संबंधित चित्र कथाओं में 'अमर चित्रकथा' का महत्वपूर्ण स्थान है। इसका ब्यौरा हम पछले अध्याय में देख चुके हैं। अमर चित्रकथा की मीरा 'भारतीय' स्त्री की प्रतीक हैं जो सभी आज्ञाएँ बना विरोध मान लेती हैं। इस छवि से एकदम विपरीत छवि मनोज प्रकाशन से प्रकाशित 'मीराबाई' में दिखती हैं। यह भी समय की मांग है। अमर चित्रकथा की छवि अपने समय की मांग थी तो मनोज प्रकाशन की मीराबाई की छवि वर्तमान की मांग है। आज जब मीरा के विद्रोही स्वरूप को 'पहचाना' जा रहा है तब ऐसी चित्रकथाओं की आवश्यकता पड़ती है। ससुराल में देवी पूजन से इंकार करते वक्त मीरा की छवि अति क्रांतिकारणी की सी दिखती हैं। यथा–

"नहीं।" एकाएक मीरा का विद्रोह फूट पड़ा, "माँ जी!" मैं श्रीकृष्ण के सिवाय किसी देवी–देवता को नहीं मानती। मेरा शीश केवल कन्हैया के समाने ही झुक

सकता है, किसी और के सामने नहीं।" मीरा को पुनः लिवाने आये पुरोहित आदि से मीराबाई जाने से इंकार कर देती हैं और राणा के लिए संदेश भी भिजवाती हैं –

"राणाजी! अब न रहूंगी तोरी हटकी।
साध संग मोह प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की।
महल किला राणा मोहं न चाहिए, केस लटा सब छटकी।"

और अंत में, मीराबाई कृष्ण में लीन हो जाती हैं।

फिल्म व बाल–साहित्य दोनों ने ही अपनी आवश्यकतानुसार मीरा को गढ़ा। वास्तव में, मीरा को गढ़ने की कोशिश मीरा के काल से ही हो रही थी। पुष्टमार्गी उन्हें नहीं गढ़ पाए तो दारी–राण्ड कह देते हैं। फिर सगुण–निर्गुण के दायरे में बांधने के प्रयास हुए और आज क्रांतियों के, विमर्शों के युग में जहाँ ईश्वर व इतिहास मर चुके हैं वहाँ ऐतहासिक मीरा व ईश्वर भक्तिन मीरा को कितना स्थान मिल रहा है, विचारणीय है।

बाजार ने मीरा की छवि को तरह–तरंह से गढ़ा है। यह वर्तमान की आवश्यकता है। मीरा के चित्र अगरबत्ती के पैकेटों पर दीवाली–होली के कार्डों पर भी तो कैलेण्डरों पर भी दिखते हैं। जिन्हें धार्मिक जनता खरीद लेती है। मीरा लोक के अधिक निकट थीं अतः अब बाजार के निकट भी हैं। इसी प्रकार से मीरा के नाम से बिकने वाले भजन भी बहुत लोकप्रय हैं। इनमें भाव सभ्यता तो वही है परंतु शब्दावली बदल गई है। फिल्मी धुनों पर मीरा, शिव, कृष्ण, आदि के भजनों को सजा दिया जाता है। परिता मुक्ता ने इस क्षेत्र में अच्छा कार्य किया है। वे बताती हैं कि फिल्मी धुन 'चांदी की दीवार ना तोड़ी, प्यार भरा दिल तोड़ दिया' की तर्ज पर 'कृष्ण की दीवानी बन कर मीरा ने घर छोड़ दिया, इक राठौड़ की बेटी ने गिरधर से नाता जोड़ दिया।' आदि ऐसे अनेक उदाहरण कांवड़ियों व तीर्थस्थानें पर मिल जाते हैं।

वास्तव में, फिल्मी धुनों के भजनों से मीरा नाम तो बहुत लोकप्रय हुआ किंतु मीरा की संवेदना का बाजारीकरण हुआ। एक निश्चित संवेदना को पकड़कर खूब

भजन बनाए गए और शेष संवेदनाओं को नकार दिया गया। जो मीरा ही नहीं समस्त लोक के लिए अनुचित था।

लोक चित्त में मीरा अपने मूल रूप में थीं। मीरा की संवेदना को लोक ने सहेजा, परखा व संरक्षण दिया। लोक ने मीरा को संत बनाया व संत से भी बढ़कर देवी की सी छवि प्रदान की। मीरा के प्रेम को भी समझा तो विद्रोह को भी। लोक में मीरा की सहज अभिव्यक्ति है ना कि किन्हीं खास विमर्शों में बंधी छवि। मीरा न तो अबला है और ना ही सबला। वे झाड़ू बुहारने वाली, चूल्हा–चौका व पति को भोजन करवाने वाली स्त्री हैं। वे प्रिय की विरह में रोती भी हैं और होली पर पति को आने का संदेशा भी देती हैं। इसी के साथ–साथ मीरा भक्तिमयी भी हैं जो साधु–संतों को सम्मान देने वाली और उनसे सम्मान पाने वाली महिला भी हैं। लोक ने मीरा की संवेदना को सहेज कर रखा है। मीरा की संवेदना अपने मूल में दिखती है। उसमें मीरा गृहस्थिन, भक्तमयी, प्रेममयी व विद्रोही और वैरागन सभी कुछ है। इंद्रधनुष के सातों रंगों की भांति मीरा की संवेदना के सभी रंग दिखते हैं। वे राणा को उलाहना देती हैं कि 'राणा तूं तो काई जाणै म्हार घट की' तो मीरा राणा को कटुक्तियाँ नहीं दे रही होती। बल्कि उनकी शिकायत है कि उनकी संवेदना व 'मन की बात' को राणा नहीं समझ रहा है। मीरा के मन की बात वर्तमान साहित्यिकता भी नहीं समझ पा रही है और मीरा के सभी पक्षों को नकार कर एकांगी छवि में बांध दिया जा रहा है। परंतु लोक ने मीरा के 'मन की बात' को समझा है और तरह–तरह के रूपों में चाहे वे लोकगीत हों, लोकनाट्य हों और अगर इनसे भी बात न बने तो किंवदंतियों को प्रचारित कर मीरा की संवेदना को सहेजा है। वास्तव में, लिखत परंपरा से कहीं महत्वपूर्ण व विशाल लोक परंपरा होती है। प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल का कहना है कि – "जिसे लिखत परंपरा कहते हैं वह भी मौखिक परंपरा में से ही चयन है।"

इस चयन में यह सावधानी रखनी चाहिए कि कोई संवेदना छूट ना जाये क्योंकि मीरा संपूर्ण रूप में मीरा हैं ना कि एकांगी छवि रूप में।

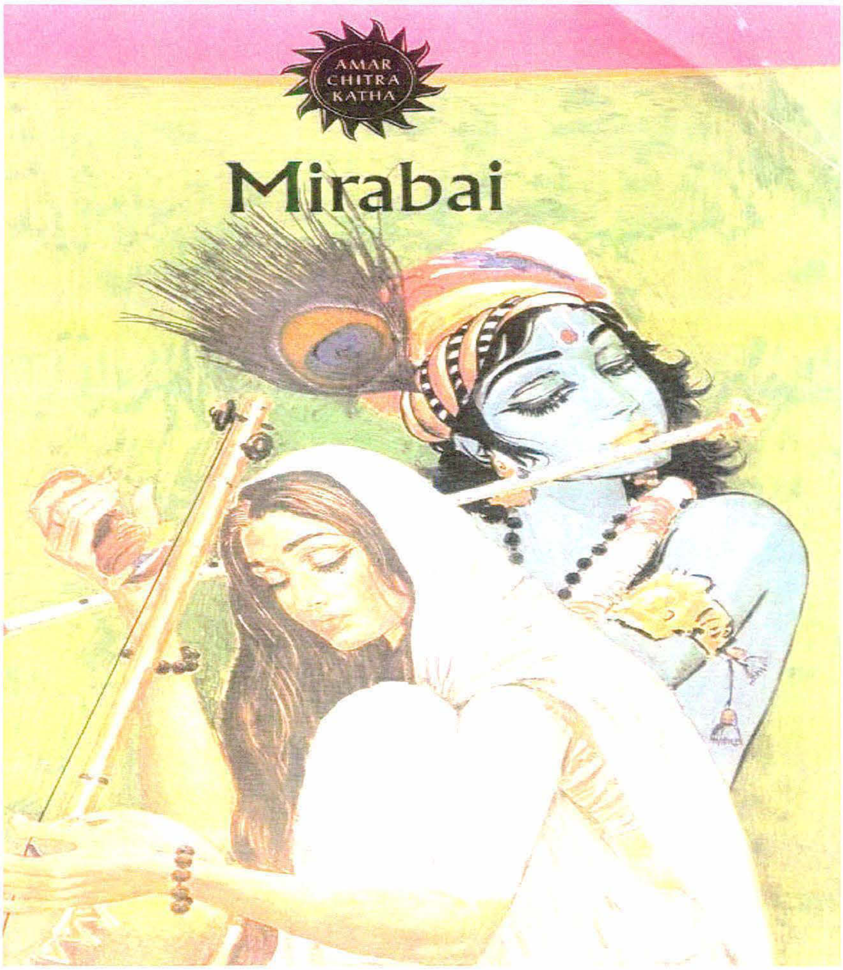

अमर चित्रकथा में मीरा–शीर्षक

आदर्श भारतीय स्त्री के रूप में मीरा– अमर चित्रकथा

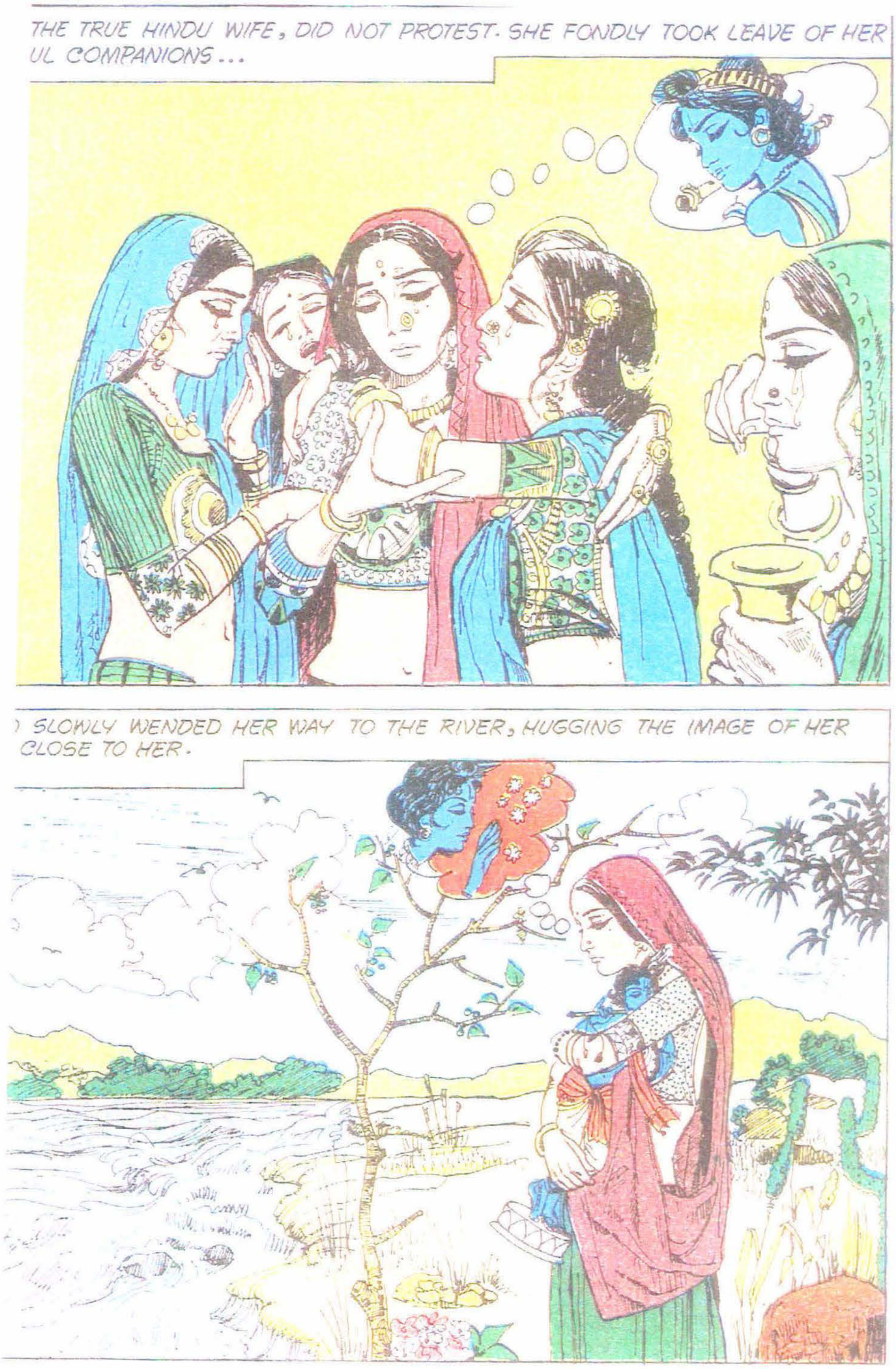

आदर्श पत्नी के रूप में मीरा– अमर चित्रकथा

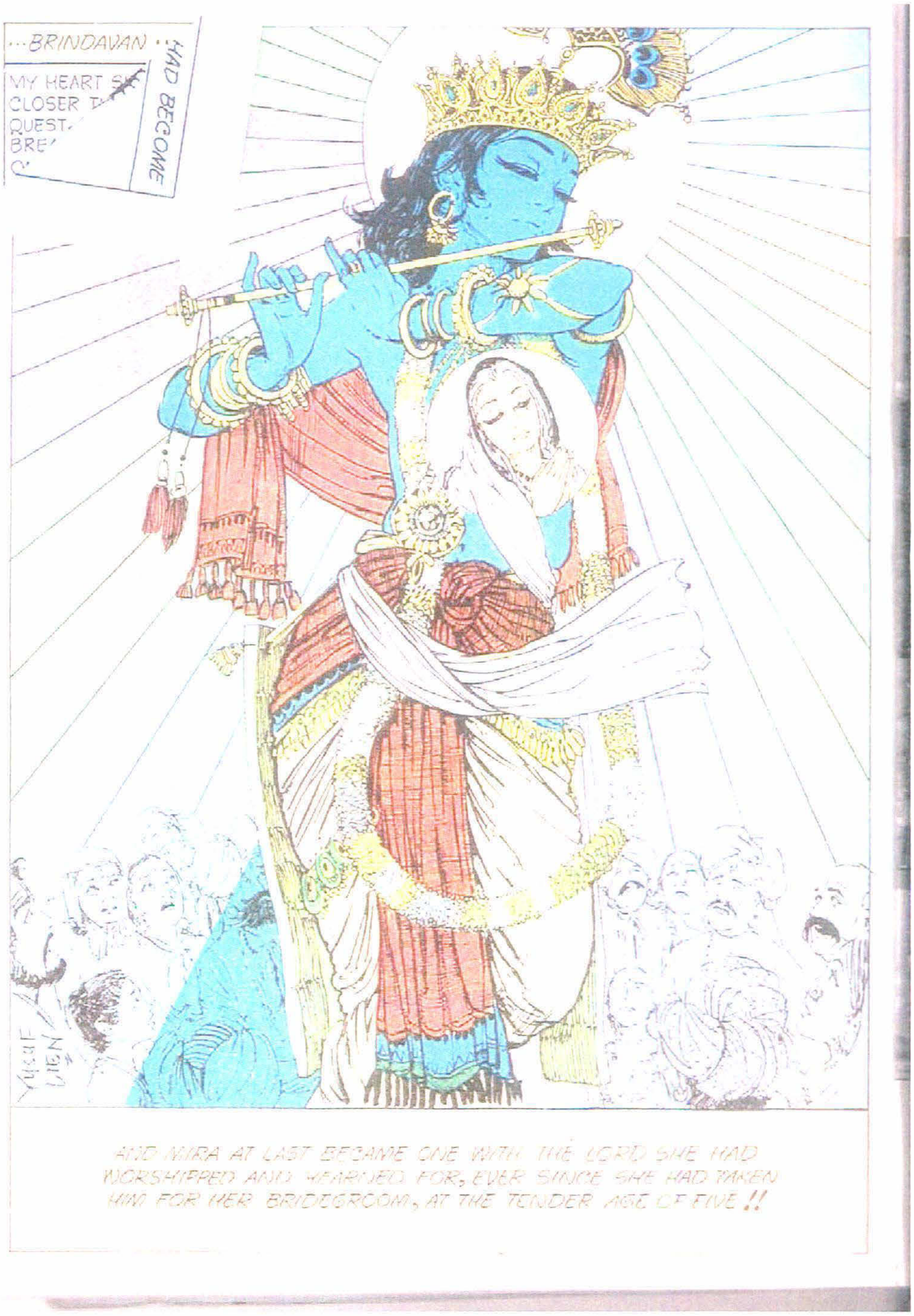

भक्तिमयी मीरा की लोक महिमा–अमर चित्रकथा

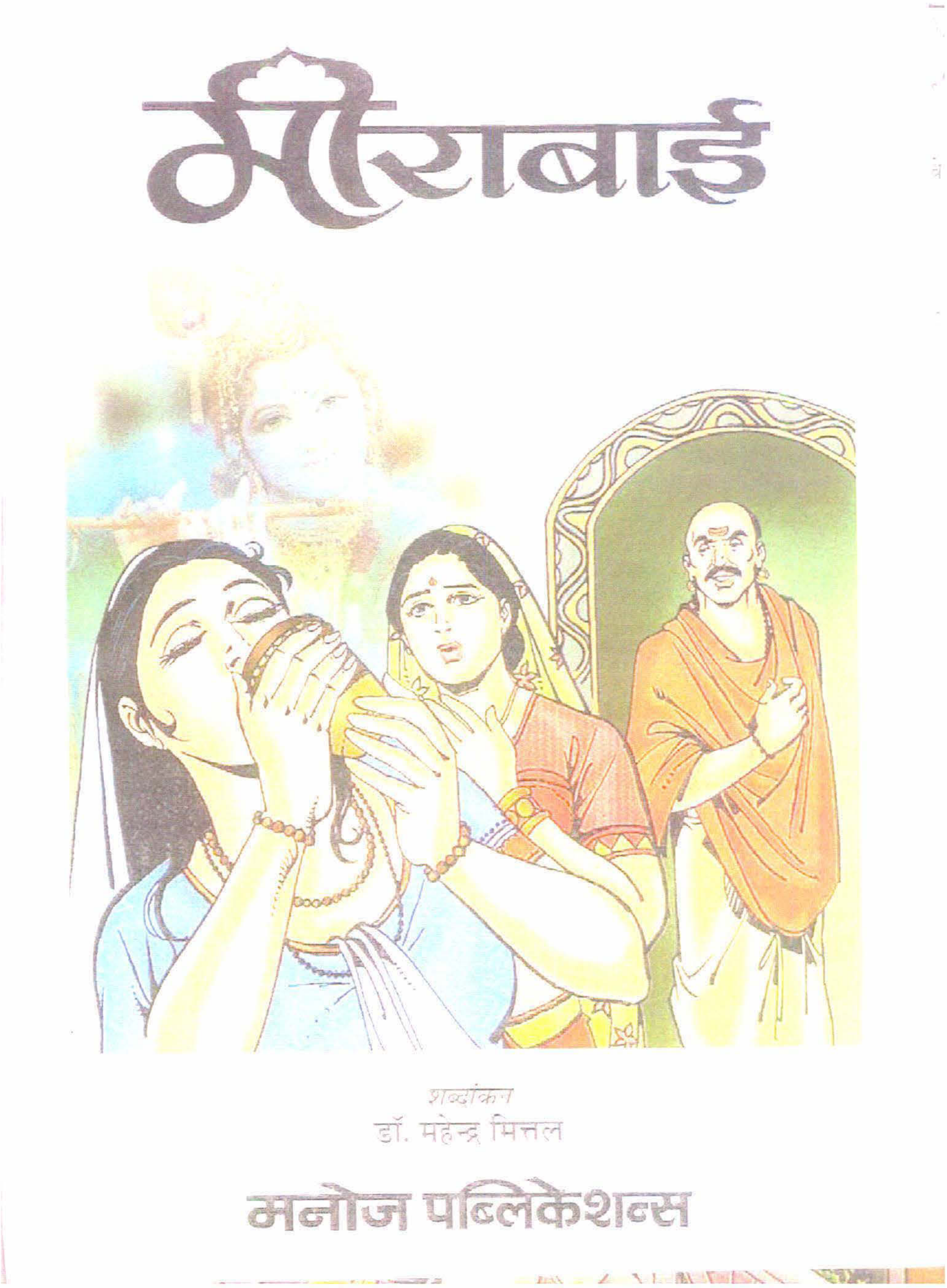

मीराबाई (चित्रकथा) मनोज पब्लिकेशन्स–शीर्षक

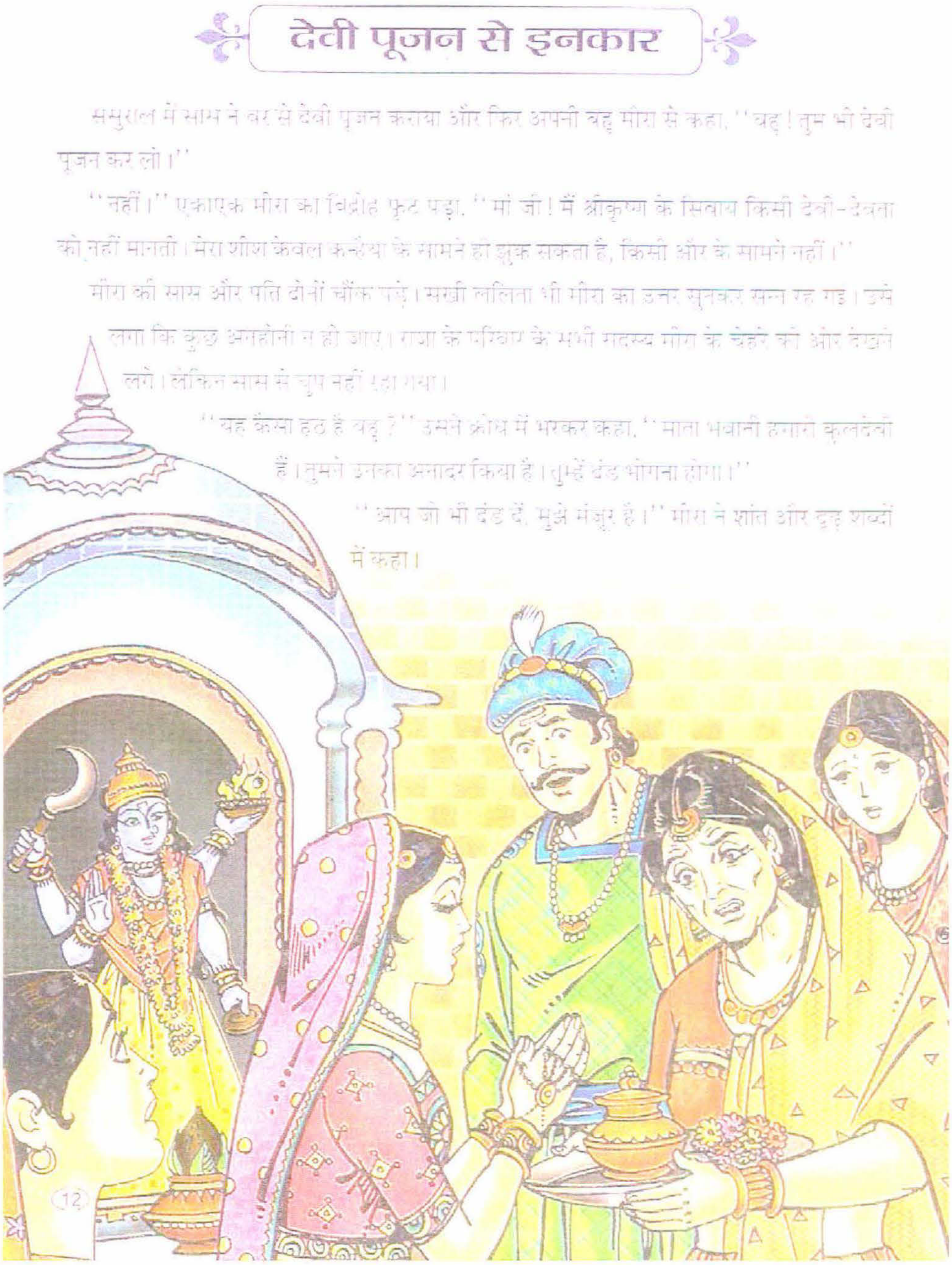

देवी पूजन से इनकार

ससुराल में सास ने वर से देवी पूजन कराया और फिर अपनी बहू मीरा से कहा, ''बहू ! तुम भी देवी पूजन कर लो।''

''नहीं।'' एकाएक मीरा का विद्रोह फूट पड़ा, ''माँ जी ! मैं श्रीकृष्ण के सिवाय किसी देवी-देवता को नहीं मानती। मेरा शीश केवल कन्हैया के सामने ही झुक सकता है, किसी और के सामने नहीं।''

मीरा की सास और पति दोनों चौंक पड़े। सखी ललिता भी मीरा का उत्तर सुनकर सन्न रह गई। उसे लगा कि कुछ अनहोनी न हो जाए। राजा के परिवार के सभी सदस्य मीरा के चेहरे की ओर देखने लगे। लेकिन सास से चुप नहीं रहा गया।

''यह कैसा हठ है बहू ?'' उसने क्रोध में भरकर कहा, ''माता भवानी हमारी कुलदेवी हैं। तुमने उनका अनादर किया है। तुम्हें दंड भोगना होगा।''

''आप जो भी दंड दें, मुझे मंजूर है।'' मीरा ने शांत और दृढ़ शब्दों में कहा।

12

मीरा विद्रोही तेवर में– मीराबाई, मनोज पब्लिकेशन्स

द्वारका में राजपुरोहित

राणा विक्रम का संदेश लेकर राजपुरोहित और पांच ब्राह्मणों का एक दल द्वारका पहुंचा और मीरा से मिलकर राणा का संदेश उन्हें दिया।

''मीरा जी!'' राजपुरोहित बोला, ''राणा जी अपने व्यवहार के लिए बहुत शर्मिंदा हैं। वे प्रायश्चित की ज्वाला में जल रहे हैं। वे आपसे क्षमा याचना करना चाहते हैं। आपको लिवा लाने के लिए ही उन्होंने हमें यहां भेजा है। आप वापस चित्तौड़ चलें। वहां जैसा आप कहेंगी, हर प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबंध आपके लिए कर दिया जाएगा।''

''नहीं पुरोहित जी! मीरा अब यहां से कहीं नहीं जाएगी।'' मीरा ने शांत भाव से उत्तर दिया, ''आप राणा जी से कह देना... ।''

''राणा जी! अब न रहूंगी तोरी हटकी।
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की।
महल किला राणा मोहिं न चाहिए, केस लटा सब छिटकी।''

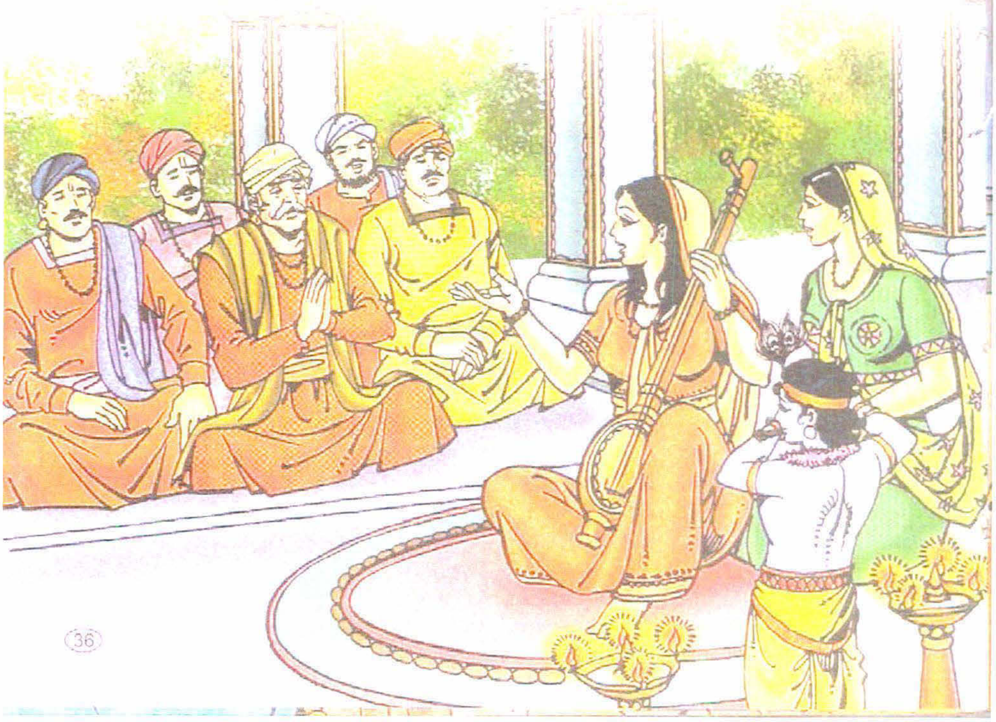

राणा को सीख भिजवाती मीरा– लाज गई घूंघट की।

सन्दर्भ

1. बलदेव बंशी 'संत मीरा बाई और उनकी पदावली परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ.38
2. सी. एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य, जोधपुर, 1999, पृ.29
3. पिता जी से जानकारी प्राप्त हुई
4. प्रतिलिपि, द्विमासिक, जून, 2008 संपादक – गिरिराज किराडू राहुल सोनी, बीकानेर, पृ.146
5. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, मैकमिलन, 1979, पृ.48
6. स्वामी आनंद स्वरूप, मीरा सुधा सिंधु, जोधपुर, पृ.87
7. प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल, कबीर : साखी ओर सबद, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2007, पृ.12
8. वही, पृ.20
9. सी. एल. प्रभात 'मीरा : जीवन और काव्य, जोधपुर, 1999, पृ.26
10. माणक पत्रिका, फरवरी 2007, संपादक पदम मेहता, पृ.9
11. मीराबाई, चित्रकथा, मनोज पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृ.12
12. कक्षा व्याख्यान के दौरान।

उपसंहार

मीरा सदानीरा है। भूगोल की भाषा में सदानीरा उन नदियों को कहा जाता है जिनमें वर्ष भर जल रहता है। मीरा की व्याख्या में कहें तो इस जल में कोमलता, प्रेम व विद्रोह सभी कुछ है। अपने उद्गम में यह नदी उद्दाम भी है, और अपनी ही तरंग में सभी वर्जनाएँ तोड़ती हैं पर समुद्र मिलन के समय गंभीरा भी।

मीरा की भक्ति उन्हें मध्यकाल से जोड़ती है तो उचित–अनुचित का निर्धारण करने की पद्धति आधुनिक काल से जोड़ती हैं। प्रेम तो सर्वकालिक है ही, उसे सीमाओं में बांधना असंभव है। एक पंक्ति में कहें तो मीरा शाश्वत हैं। भारतीय मिथकों से उदाहरण लें तो राम, सीता और कृष्ण आदि आज भी जनमानस में जीवित हैं। श्रेष्ठ स्त्री या पुरुष के लिए लोक आज भी सीता व राम के उदाहरण देता है। ठीक इसी बिंदु पर मीरा भी जनमानस से जुड़ती हैं। 'प्रेममयी' और 'विद्रोही' किसी भी महिला में मीरा को देख जाता है। इसीलिए मीरा सदानीरा भी है। भारतीय जनमानस में सदा हिलोर लेने वाली नदी, जो प्रेम व उचित अनुचित की अपनी ही पद्धति का पाठ पढ़ाती है।

भारतीय जनमानस ही नहीं साहित्य में भी मीरा का प्रभाव है। भगवती शरण मिश्र का उपन्यास 'पीतांबरा' इसका अच्छा उदाहरण है। महादेवी वर्मा तो आधुनिक मीरा के नाम से विख्यात हैं। इसी प्रकार से पूना के हरिकृष्ण मठ में श्रीमती इंदिरा देवी ने मीरा के नाम से अनेक भजन लिखे हैं। इनकी इससे भी आगे बढ़कर कहें तो मीरादासी संप्रदायों की भी चर्चाएँ मिलती रही हैं। मीरा ने स्वयं तो किसी संप्रदाय में दीक्षा नहीं ली परंतु उनके नाम से संप्रदाय के उल्लेख भी मिलते हैं।

वास्तव में, मीरा अब व्यक्ति विशेष नहीं जाति वाचक हो गई हैं। चित्तौड़, जोधपुर के क्षेत्र में भक्त स्त्रियाँ जो अधिकतर विधवाएँ होती हैं, स्वयं को मीरा कहलवाना पसंद करती हैं जो मीरा की लोक मानस में ख्याति प्रकट करता है। मीरा ने तो गुरु–शिष्य परंपरा ही नहीं रखी परंतु ये सभी स्त्रियाँ मीरा की तरह कृष्ण की उपासिकाएँ हैं अतः मीरा शब्द को प्रतीक की तरह प्रयोग किया जाता है।

ये तो रही लोक की बात परंतु भक्त परंपरा में मीरा को जांचें तो पाते हैं कि मध्यकाल प्रेम, भक्त व लोक तीनों का समंवय करता है। मध्यकालीन दृष्टि इतनी समालोचित है कि मीरा के केवल भक्त रूप को नहीं देखती। वह प्रेम व विद्रोह को भी समझती है और व्याख्यायित करती है। मीरा के निंदक पुष्टमार्गी भी अंततः मीरा की समाज स्वीकृत को देख, पत्र द्वारा अपनी शिष्या हो जाने की बात कह देते हैं। जो मीरा के महत्व को बताता है।

इसी प्रकार से किंवदंतियाँ और इतिहास जो की परस्पर साथ चलते हैं, मीरा की छवियों को देखने के क्रम में पाते हैं कि मीरा अतिदृष्टि का शिकार हो जाती हैं। उपनवेशवादी दृष्टि जहाँ उन्हें गणिका समदृश्य बताती है तो राष्ट्रवादी दृष्टि के अनुसार मीरा भारतीय संस्कृत की प्रतीक बन जाती हैं। जो भी हो, वे बस सहजता में मीरा ही नहीं रह पाती हैं। परंतु लोक में उन्हें समझा गया है। लोकचित्त में मीरा सहज मीरा हैं जो रोती हैं, गाती हैं और उसी सहजता से विद्रोह भी करती है। जब मीरा टेर लगाती है कि 'हेरी म्हारो दरद न जाणे कोई' तो लोक उनके दर्द को समझता है और अपनी स्मृति में सदा के लिए रख कर मीरा को अमर कर देता है।

इसी क्रम में मीरा छाप के अनेक लोकगीत व लोक–कथायें प्रचलित हुई। कुछ कथाओं में तो इनको पढ़ने–सुनने का पुण्य भी बता दिया गया है। यथा –

"मीरा हर की लाडली, रही गुपालह भय,
दुख दरद्र बनसै सदा, पढ़ै–सुनै सुख पाय।"

मीरा के विषय में अनेक किंवदंतियाँ व उनसे जनित अनेक छवियाँ मौजूद हैं। ये छवियाँ कितनी प्रामाणिक या आप्रामाणिक हैं, इससे ज्यादा महत्वपूर्ण यह मुद्दा है कि ये 'छवियाँ' क्यों बनीं? इनकी आवश्यकता, महत्ता व परणिाम क्या हुए? यह मध्यकाल की वास्तविकता थी अथवा वर्तमान की आवश्यकता, समझना आवश्यक होता है जिस तरह लोक मध्यकालीन संतों की उपमाएँ आज भी देता है ठीक उसी प्रकार साहित्य व इतिहास भी, अपने हिसाब से इनकी व्याख्या समय–समय पर करते हैं। यह वर्तमान की आवश्यकता है। इन मध्यकालीन संतों

को वर्तमान में रह कर आधुनिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में देखना उचित है परंतु परिणाम या छवि एकांगी नहीं होने चाहिए। शेष व्यक्तित्व का नकार व संवेदना का मूल उत्स नहीं खोना चाहिए। उदाहरण के लिए कबीर और मीरा की एक ख़ास छवि निर्मित हो गई है और उससे इतर् इनका शेष व्यक्तित्व गौण हो गया है।

मीरा के संदर्भ में संक्षेप में कहें तो, वर्तमान की आवश्यकता से इन मध्यकालीन संतों को देखना चाहिए, प्रेरणा लेनी चाहिए परंतु एक निश्चित छवि में बांध देना और शेष व्यक्तित्व व संवेदनाओं को नकारना अनुचित होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

भक्तमाल

श्रीभक्तमाल – नाभादास
(श्री प्रियादासजीकृत भक्तरसबोधनी टीका सहित)
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास प्रकाशन कल्याण
बम्बई, 1989

भक्तमाल राघवदास
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर, 1965

वार्ता साहित्य चौरासी वैष्णवन की वार्ता
पूजा प्रकाशन
अहमदाबाद, 2004

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
पूजा प्रकाशन,
अहमदाबाद, 2004

इतिहास ग्रंथ
मध्यकालीन भारत – इरफान हबीब (संपादक)
राजकमल प्रकाश, नई दिल्ली, 1999
आधुनिक भारत का इतिहास – बी.एल.ग्रोवर, यशपाल
एस.चंद एण्ड कं. ल. 2005
राजस्थान का इतिहास – गोपीनाथ शर्मा
शिवलाल अग्रवाल, एण्ड कं. आगरा

राजस्थान के प्रमुख दुर्ग – डॉ. राघवेन्द्र संह मनोहर
राजस्थान हिंदी गंथ अकादमी, जयपुर, 1997

साहित्य इतिहास ग्रंथ

हिंदी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचंद्र शुक्ल
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2005

हिंदी साहित्य उद्भव और विकास — हजारी प्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

हिंदी साहित्य का इतिहास — लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

हिंदी साहित्य व संवेदना का विकास रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास — बच्चन सिंह
राधकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2005

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतहास — विश्वनाथ त्रिपाठी
एनसीईआरटी, 1997

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास — माध्यमक शिक्षा बोर्ड राजस्थान
अजमेर, 2007

गुजराती साहित्य का इतिहास — श्री जयंतकृष्ण हरकृष्ण दुवे
राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन हिंदी भवन
लखनऊ, 1973

पद संग्रह व आलोचना गंथ

मीराबाई की पदावली	आचार्य परशुराम चतुर्वेदी हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2002
मीरा सुधा संधु	स्वामी आनंद स्वरूप राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 1957
मीरा : एक अध्ययन	पद्मावती 'शबनम' लोक सेवक प्रकाशन, बनारस, 2007
मीरा वृहत्पदावली (द्वतीय भाग)	कल्याण संह शेखावत ,संपा. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1975
मीरा : प्रेम दीवानी	वीरेन्द्र सेठी राधेस्वामी सत्संग ब्यास, अमृतसर, 1980
संत मीराबाई और उनकी पदावली	बालदेव वंशी, संपा. परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2008
मीरा पदमाला	आशुतोष गुप्त (सं.) मीरा स्मृति संस्थान, चित्तौड़गढ़, 2004
मीराः जीवन और काव्य (दो खंडों में)	डॉ.. सी. एल. प्रभात राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर, 1999
मीरा की प्रामाणिक जीवनी	प्रो. कल्याण सिंह शेखावत राजस्थान ग्रंथागार, जोधपुर, 2006
मीराबाई की ग्रांथावली–1 मीराबाई की जीवनी	प्रो. कल्याण सिंह शेखावत वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व	संजय मल्होत्रा संपा. मीरा स्मृति सं. प्रकाशन, नई दिल्ली
मीरा	डॉ. मंजु चतुर्वेदी राजस्थान, हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2002

मीरा का काव्य	विश्वनथ त्रिपाठी मैकमिलन, 1979
अनभै संचा	मैनेजर पाण्डेय पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
कबीर : साखी और सबद	पुरुषोत्तम अग्रवाल हिंदी बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2007
विचार का अनंत	पुरुषोत्तम अग्रवाल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा	डॉ. जय सिंह नीरज डॉ. भगवती लाल शर्मा राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007
राजस्थान की रसधरा	पुरुषोत्तम लाल मेनारया राजस्थान संस्कृत परिषद्, जयपुर, 1954
राजस्थानी लोकगीत	सूर्य करण पारीक हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 2012
The story o Mira Bai	Bankey Behari Gita Press, Gorakhpur, India
Three Bhakti Voices	John Stratton Howly Oxord University Press, 2005
The Community o Mirabai	Parita Mukta Oxord University Press, Delhi, 1997

उपन्यास व बाल साहित्य

पीतांबरा	भगवतीशरण मिश्र राजपाल प्रकाशन, 2004
मीराबाई (चित्रकथा)	मनोज पब्लिकेशंस नई दिल्ली,
Amar Chitra Katha (The Great Hindi Poets)	India Book House Pvt. Ltd., Mumbai

पत्रिकाएँ

लूर, मीरा विशेषांक (साहित्यिक, सांस्कृतिक अर्द्धवार्षक पत्रिका), सं.–जयपाल सिंह राठौड़, जुलाई–दिसंबर, 2003

आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक छब्बीस सं.–नामवर संह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,

गगनांचल, अप्रैल–जून, 2008

साहित्य अमृत, डॉ. लक्ष्मीलाल सिंधवी (सं.), नई दिल्ली, मई 2007

माणक, पदम मेहता (सं.), जोधपुर, फरवरी, 2007

सुजस (लूंठी अखूठी संस्कृति) डॉ. अमर सिंह राठौड़, जयपुर, फरवरी–मार्च, 1995